ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—३१

शेर-ओ-सुख़न

पाँचवाँ भाग

प्राचीन और वर्त्तमान ग़ज़लगोईपर तुलनात्मक अध्ययन, हरजाई, बेवफ़ा, जालिम मअ्शूक़के एवज़ नेक और पाक हबीबका तसव्वुर, रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, रंजो-ग़मका मुसकान भरा स्वागत निराशावादका अन्त
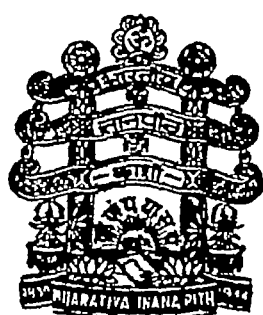
भा र ती य ज्ञा न पी ठ का शी
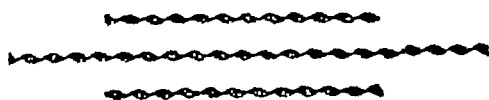
नज़र आये-न-आये कोई आंसू पूंछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी! दीवारो-दर देंगे ॥

—शाद अज़ीमाबादी

कोई सुने न सुने इन्कलाबकी आवाज़।
पुकारनेकी हदोंतक तो हम पुकार आये ॥

—अनवर साबिरी

न खींच ऐ चारागार! मजरूह दिलसे खूंचिका नावक।
सजाया है बड़ी काविशसे हमने इस गुलिस्तांको ॥

—'दिल' शाहजहाँपुरी
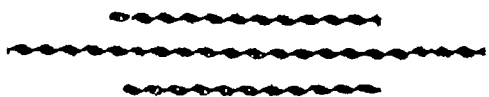
साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्रीको

अनेक शुभ भावनाओं एवं

शुभाशीर्वादों सहित

सस्नेह भेंट

●

गोयलीय

द्वितीय संस्करण

प्रथम संस्करणमे सिंहावलोकनका पूर्वार्द्ध द्वितीय भागमे लगाया गया था, क्योकि वह पाँचो भागोके छपनेसे पूर्व लिखा गया था और उसका उत्तरार्द्ध पाँचवे भागके मुद्रित समय लिखा गया था, अत. वह पाँचवे भागमे दिया गया था। अब द्वितीय संस्करणमे अध्ययनकी सुविधाकी दृष्टिसे दोनो अश एक साथ पाँचवे भागमे दिये गये है, और पाँचवे भागके प्रथम संस्करणमे दिये गये शाइरोका परिचय एवं कलाम द्वितीय संस्करणमे नही दिया गया है। उनमे-से कुछ शाइर चौथे भागमे दिये गये है, और कुछ वे शाइर जो अपनी आयु या शाइराना मर्त्तबेके ख्यालसे नये युगके शाइर है, उनका यथोचित परिचय एवं कलाम शाइरीके नये दौरमे क्रमानुसार यथास्थान दिया जायेगा।

संशोधन आदिके अतिरिक्त इस भागमे ३०० नये मअ्नी फुटनोटमे यथास्थान और बढाये गये है। १४ पृष्ठका नया वक्तव्य और लिखा है।

डालमियानगर
६ दिसम्बर १९५७

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

विषय-सूची

प्रारम्भसे ई० सन् १९५७ तककी इश्क़िया शाइरीपर

सिंहावलोकन

पूर्वार्द्ध

ज़रूरी

१—प्रस्तुत पाँचवे भागमे उर्दूके प्रारम्भसे १९५७ ई० तककी गजलका इतिहास सम्पूर्ण हो गया है।

२—अब इससे आगे—नज्म, रूबाई, मर्सिया, गीत आदिका क्रम-वद्ध इतिहास और इनके सर्वश्रेष्ठ शाइरोंका परिचय एव कलाम तैयार हो रहा है, जो कि **'शाइरीके नये दौर'** और **'शाइरीके नये मोड़'** शीर्षक पुस्तकोंमे सम्भवतः आठ भागोमे समाप्त होगा। इन ग्रन्थोंकी रूप-रेखाका किंचित् आभास पाँचवे भागके अन्तमे दी हुई दो पृष्ठोकी विज्ञप्तिसे हो सकेगा।

३—उन ख्याति-प्राप्त गजल-गो शाइरोंका परिचय भी उक्त नवीन पुस्तकोमे मिलेगा, जिनकी आयु ५० से अधिक नही है। यानी जो इसी बीसवी शताब्दीमे उत्पन्न हुए और १९२० के बाद १९५७ तक किसी भी अवधिमे प्रसिद्ध हुए। अथवा अपने रगे-सुख़नके कारण वयो-वृद्ध होते हुए भी नये युगके शाइरोंमे जिनका शुमार है। क्योंकि 'शेरो-सुख़न' मे प्राचीन शाइरोके अतिरिक्त स्वर्गस्थ अथवा वयोवृद्ध वर्त्तमान-युगीन उन्ही शाइरोंका उल्लेख हुआ है, जिनकी आयु ५० से अधिक है, यानी जो १९वी शताब्दीमे पैदा हुए और १९२० ई० के लगभग उस्तादीके मर्त्तबेको पहुँच गये। इनसे कम आयुके नज्म-गो एव ग़ज़ल-गो शाइरोंका परिचय **'शाइरीके नये दौर'** और **'शाइरीके नये मोड़'** ग्रन्थोंमे होगा। इतिहासकी सुरक्षाकी दृष्टिसे पुरानोके साथ नयोंकी खलत-मलत मुझे उचित प्रतीत नही हुई। युगानुसार और क्रमवार परिचय देना ही उपयुक्त जँचा।

४—'शेरो-सुख़न' गजलका इतिहास है। लेकिन उसमे चन्द ऐसे

शाइरोका भी परिचय एव कलाम दिया गया है, जो गजल और नज्म दोनो कहते है। क्योकि वे अपनी आयु अथवा ख्यातिके लिहाजसे इसी युगके शाइर है। यथास्थान उनकी १०-५ नज्मोके नमूने भी दे दिये गये है।

५—'शेरो-शाइरी' और 'शेरो-सुखन' मे केवल १४ हिन्दू शाइरोका उल्लेख हुआ है। वर्त्तमान युगीन अनेक ख्यातिप्राप्त हिन्दू शाइरोका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड' मे सकलित किया जा रहा है और पुराने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शाइरोके कलामकी खोज भी की जा रही है। उन सबका परिचय किसी भिन्न ग्रन्थमे देनेका प्रयास किया जायगा।

डालमियानगर
१ जुलाई १९५४ ई०

द्वितीय संस्करणके लिए

पसन्द अपनी-अपनी, समझ अपनी-अपनी

शेरो-सुखनके पाँचो भागोमे अनेक स्थलोंपर प्रसगवश तीखी आलोचनाएँ भी हुई है। जिसे शेअर समझनेका शऊर नही, बज्मे-अदबमे बैठनेका सलीका नही, फिर भी उनके कलामपर लबकुशाई करे ? बौना होकर भी हिमालयपर चोट करनेकी जुरअत ! लाहौल वलाकूवत... ...

बक गया हूँ जुनूँमे क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे खुदा करे कोई

—ग़ालिब

अणुकी क्या बिसात जो सूर्य्यके प्रकाशको धूमिल बता सके? आन्धी-तूफानके क्षणोमे सूर्य्य-प्रकाश किसीको धूमिल प्रतीत होने लगे तो इससे सूर्य्यकी गरिमा कम नही हो जाती। गजलका विश्लेपण करते हुए उसपर तत्कालीन शासको, रीति-रिवाजो, वातावरण आदिका क्या प्रभाव पडा, उसकी प्रगतिमे कौन सहायक और कौन बाधक हुए ? उसके उत्थान एव पतनके क्या कारण थे। लखनवी-देहलवी स्कूलोंकी स्पर्द्धाने उसे क्या लाभ और क्या नुकसान पहुँचाया ? प्रसगवश स्पष्टीकरण करते हुए यथास्थान मधुर और कटु उल्लेख हुए है।

उनके कलामरूपी समुद्रको मन्थन करनेपर जो कुछ पाया है उसे शेरो-सुखनके पृष्ठोमे सँजो दिया है। बकौल गालिब—

रूए-सुख़न किसीकी तरफ़ हो तो रूस्याह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥

कौन शेअर अच्छा है और कौन बुरा ? यह परख आसान नही।

शाइराना कलामसे साधारण-सी वातमे भी चार चॉद लग जाते हैं और गैर शाइराना अन्दाजसे कही गई वडी-से-वडी वात भी दो कौड़ीकी हो जाती है। सिद्धहस्त कलाकार नग्न मूर्तिमे भी वह प्रभाव उत्पन्न कर देता है कि दर्शक देखते ही आत्म-विभोर हो जाये। वडे-से-वडा मूर्ति-भजक भी मस्तक झुकानेको वाध्य हो जाये और अनाडी पूज्यनीय व्यक्तियोके भी ऐसे चित्र बना देता है, जिन्हे कौडीके तीन-तीन भी नही पूछा जाता। शेअरकी अच्छाई-बुराई परखते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि शाइरने अमुक शेअर किस वातावरणमे, किस परिस्थितिमे कहा। क्योकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, वातावरण आदि शाइरीके निर्माणमे वहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

सन् १९२३ की मेरे सामनेकी घटना है। ६-७ मित्र पिकनिकके लिए दिल्लीसे कुतुबमीनार गये हुए थे। खाने-पीनेके वाद लतीफों और शेअरो-शाइरीका भी दौर चला। तभी एक हजरतको लनतरानीकी जो सूझी तो यह मिसरअ—

ओढ़ा गया न तुससे डुपट्टा सम्भालके

देकर बोले—"जो इसपर पॉच मिनटमे गिरह न लगाये, वह रण्डीका।"

गाली सुनी तो एक सज्जन जो बहुत ही भद्र, सभ्य और मितभाषी थे, मारे गैरतके उनके मुँहसे अनायास निकल गया—

जूता जो हमने तेरे लगाया निकालके।
ओढ़ा गया न तुझसे दुपट्टा सम्भालके॥

शेअरका सुनना था कि यार लोगोंने कहकहोसे आस्मान सरपर उठा लिया। दादका वह रेला था कि थम नही पा रहा था। किस्म-किस्मकी हाशियाआराइयाँ होने लगी। किसीने कहा—"क्यो यार, देसी लगाया या विलायती?" तो किसीने तुरप जडी—"क्यो साहब बस एक ही?"

और वे मिसरेबाज है कि कटे जा रहे है और झेप मिटानेके लिए दाद देनेमे सबसे पेश-पेश है ।

अब देखिए न यह शेअर है न शेअरकी दुम। मगर मौकेपर इसीने सबकी आबरू रख ली। अब कोई साहब उक्त तुकबन्दीको उन सज्जनके नामसे चस्पॉ कर दे तो उस गरीबके पास सर फोड लेनेके सिवा और चारा भी क्या है ?

प्राय. सभी लेखको और शाइरोको प्रसगवश रुचिके विपरीत भी कभी-न-कभी कहना पड जाता है।

दोस्तोका मजमअ लगा हुआ है। एक-से-एक बढकर बेनुकत उड रहा है। हास्य-परिहास चल रहा है। ऐसे वातावरणमे मौलवियाना रग-ढग कोई कबतक इख्तियार कर सकता है। विवाह-शादी, मेले-तमाशे, तफरीही मजलिसो-पिकनिकों आदिमे हर शख्स अपनी जौलानीये तबिअत-का परिचय देना चाहता है। बडे-से-बडे गम्भीर व्यक्तिके मुखसे भी ऐसे विनोदी वाक्य निकल जाते है कि जिनकी उनसे कभी आशा नही की जा सकती। आखिर इन्सान-इन्सान है। न वह चौबीसो घण्टे क़ुरआनकी तिलावत ही कर सकता है और न गीता-रामायणका अखण्ड पाठ। हर व्यक्तिको जीवनमे आमोद-प्रमोदकी आवश्यकता है।

'रियाज' ख़ैराबादी दोस्तोके मजमेमे बैठे हुए है। ख़ुश गप्पियॉ चल रही है। हाजिर जवाबीके नये-से-नये जुमले तराशे जा रहे है। तभी एक दोस्त यह मिसरअ देकर रियाजको गिरह लगानेके लिए मजबूर कर देते है—

यह चोटी किस लिए पीछे पड़ी है ?

अब आपही बताये रियाज साहब क्या करे ? क्या वहॉसे उठकर मस्जिदमे जाकर अज़ान देने लगे या उक्त मिसरेपर कुरआन शरीफकी कोई आयत चस्पाँ कर दे ? या मौलवियाना नसीहत झाडने लगे ? आखिर गिरह लगानेपर बाध्य होते है—

रहे सीना तना लंगरसे इसके।
यह चोटी इसलिए पीछे पड़ी है॥

मिर्ज़ा दाग शतरंज खेल रहे हैं। प्यास लगनेपर पानी मँगवाया गया। एक १२-१३ वर्षकी छोकरी पानीका गिलास लाई तो हवाके जोरसे उसका दुपट्टा कान्धेसे सरक गया। उसने मारे हयाके दोनो हाथ सीनेपर रख लिये। दागने यह मंज़र देखा तो अनायास उनके मुँहसे निकला—

बादे-सबाने भी न किया उनको बेहिजाब।
सीनेपै हाथ आ गये, जब शाना खुल गया॥

दाग ही क्या, कोई और सजीदा शाइर भी यह दृश्य देखता तो इसी तरहके भाव व्यक्त करता। गजलका शेअर प्रकटमें कुछ और अन्तरगमें कुछ और भाव रखता है। गज़लमे हर बात हुस्नो-इश्क, साकी-ओ-मैख़ाना और गुलो-बुलबुलके माध्यमसे कही जाती है। यह तो अपनी-अपनी समझ और रुचि है कि गज़लके शेअरको कहाँ और किस सलीकेसे उपयोगमे लाया जाय। दर्पणमे प्रतिबिम्बित होनेकी क्षमता है। हूर और लगूर सभीके चेहरे उसमे देखे जा सकते हैं।

१९३० ई० के असहयोग-आन्दोलनके युगकी बात है, दिल्लीके कम्पनी बागमे कॉग्रेसके जलसेमे राजपूताना-केसरी श्री अर्जुनलाल सेठीका धुआँ-धार भाषण हो रहा था। जनतामे एक हूका आलम था। सब दम-व-खुद बने सुन रहे थे। "अग्रेजोने कैसी-कैसी धूर्त्तताओसे भारतको आधीन किया, यहाँके उद्योग-धन्धोको किन बेरहमियोंसे चौपट किय? भारतीयोको गुलाम बनाये रखनेके लिए क्या-क्या ऐय्यारियाँ करते रहते हैं। उनसे अब दामन बचाकर निकलनेका वक़्त आ गया है" इसतरहके भाव व्यक्त करते हुए जौकका यह शेअर—

माल जब उसने बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बगलमें मारा॥

कुछ इस अन्दाजसे पढकर बैठ गये कि आसमान दादो-तहसीनसे गूँज उठा और फिर किसी अन्य वक्ताका रग न जम सका। इसी तरह जैन-परिषदके अधिवेशनमे जहाँ रूढिवादी बहुत बडी सख्यामे दस्सा-पूजा प्रस्तावका विरोध करनेको डटे हुए थे। एक कुशल व्याख्याताने प्रस्तावपर बोलते हुए अन्धविश्वासोकी बखिया उधेडते हुए, और नवीन अच्छी बातोको ग्रहण करनेकी प्रेरणा देते हुए जब यह शेअर—

वस्लसे इंकार करना यह पुरानी बात है।
अब नये अन्दाज सीखो दिल जलानेके लिए॥

पढ़ा तो अधिवेशनमे उनकी ऐसी धाक जमी कि विरोधी भी प्रस्तावके समर्थनमे हाथ उठा गये। इसीतरह यह शेअ़र—

खूब पर्दा है कि चिलमनसे लगे बैठे है।
साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं॥

कितना रगीन और चुलबुला है। मगर देखिए अ़ल्लामाॅ नियाज फतहपुरीके इस्तेअ़मालका सलीका—पाकिस्तान और भारतके मैत्रीपूर्ण समझौतेकी वार्त्ता जब प० नेहरू और लियाकतअलीमे चल रही थी। उन्ही दिनों लियाकतअली पाकिस्तानमे भारतको घूँसा भी दिखाते थे और समझौतेके लिए हाथ भी बढाते थे। उसीपर अगस्त १९५३ के निगारमे सम्पादकीय लिखते हुए लियाकतअलीको लक्ष करते हुए नियाजने अन्तमे लिखा कि—

साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं

पाकिस्तानके तीसरे प्रधान मत्री मुहम्मदअली जब मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए भारत आये तो बहुत खुलूसे दिलीसे वार्त्तालाप हुआ, जिससे जनताको आभास होने लगा कि अब भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध अच्छे होते चले जायेगे। नियाज साहबने इसी सम्बन्धमे लिखा—

"बहरहाल यह मुलाकात बडी मुबारक मुलाकात थी और अगर यह सिल्सिला जारी रहा तो—

और खुल जायेंगे दो-चार मुलाक़ातोंमें"

पत्र-व्यवहारमे भी उर्दू-अदीब अशआरका इस्तेअमाल इस कौशलसे करते है, गोया गागरमे सागर भर देते है। उर्दूमे पत्र-व्यवहार सम्बन्धी बीसो सकलन प्रकाशित हो चुके है। यहाँ हम अपने अभिन्न मित्र श्री सुमत-प्रसाद साहब जैन पी० सी० एस० के अपने पास आये हुए चन्द पत्रोंका केवल उतना अश दे रहे है, जो अशआरसे सम्बन्धित है —

गुड़गाँव ७ मार्च १९४२

"ऊपरके पतेसे आपको अन्दाजा हो गया होगा कि मै भी अब आपकी तरह जिलावतन हूँ और १५ दिनसे गुडगाँवके जगलमे ख़ाक छान रहा हूँ। भई बडी ख़राब जगह है। यूँ कहनेको तो दिल्लीसे सिर्फ २० मील दूर और कुतुबसे १० मील है। पर ऐसे समझो जैसे सुखके साथ दु.ख लगा हुआ है। वुस्अतका यह हाल है कि आपको न साइकिलकी जरूरत न घोडागाडी की। आप चाहे कही हो। कोई भी जगह ५ मिनिटके फासलेसे ज्यादा नही है। फिर न बिजली; न नल, न सिनेमा, न चाट-पकौड़ी। बस वकील, अदालते और अहलकार; इनको चाहे ओढ लो चाहे बिछा लो। यह विचार करके कि आपको तो इस दश्त (जगल) सैया ही (यात्रा)मे सालसे अधिक हो चुका, यह शेअर याद आ गया—

आ अन्दलीब मिलके करें आहो-ज़ारियाँ।
तू हाय गुल पुकार, मैं चिल्लाऊँ हाय दिल॥

शनिवारको अलवत्ता यार लोग दिल्ली भाग लेते है और फिर सोमवारकी सुबहसे पहले नही पलटते। पर, यह भी कुछ दिनोकी मौज है। ऊखलीमे सर दिये बाद कही बहुत दिनोतक मूसलसे बचाव हो सकता है? हाँ एक क्लब भी है। जहाँ शामको थोडा-बहुत ताश

मिल जाता है। पर तुम जानो, 'प्रकाश' और 'ज्योति' जैसे भाई लोगोंके बगैर क्या ताशका मजा ? वे शौककी महफिले थी, यहाँ धधा समझो।

तुम्हीं कहो कि गुजारा सनम-परस्तोंका।
बुतोंकी हो अगर ऐसी ही खू तो क्यों कर हो ?

रावलपिण्डी १८-१२-४६

·····"पत्रका उत्तर तो तुरन्त दोगे ना ? अरे बाबा मुझे कहो तो मैं डालमियानगर भी आनेको तैयार हूँ। 'साइल'का वह शेअर याद दिला दूँ—

शबे-वअ्दा वोह आ जायें, न आयें मुझको बुलवालें।
इनायत यूँ भी और यूँ भी, करम यूँ भी है और यूँ भी।।

रावलपिण्डी ९-१-४५

"नये सालकी बधाई। मगर आप है कि चिट्ठी ही नही लिखते। भई ऐसा नही चाहिए। बकौल 'जिगर'—

एक तजल्ली एक तबस्सुम
एक निगाहे-बन्दानवाज़

बस यही कुछ हमारे लिए काफ़ी है।

रोहतक ९—२—४७

[पत्रोत्तर देनेमे मुझे विलम्ब हुआ तो बतौर उलाहना पत्रमे रविश सिद्दीकी केवल निम्न शेअर लिख भेजा।]

ज़िन्दगी क्यों हमातन गोश हुई जाती है।
कभी आया है जो आयेगा पैगाम उनका ?

रोहतक २४-३-४७

"आपको रावलपिण्डीके नूरपुरके मेलेके बारेमे बताया था ना ? जहाँ हरसाल कई सौ गानेवाली जमा होती है और बडे ठाठका मेला

होता है। जमालके साथ तीन साल उस मेलेकी सैर की है। अबकी बार झगडोके कारण शायद मेला न हो सकेगा। मैंने जमालको लिखा कि फिर हरिद्वार ही हो आवे। यह लिखते हुए मिर्ज़ाका एक शेअर याद आ गया। आप भी सुनिए। कैसा चस्पाँ होता है? और दूसरे मिसरेमे 'ही' शब्द क्या मजा दे रहा है।—

अपना नही यह शेवा कि आरामसे बैठें।
उस दरपै नही बाट तो कअ्बे ही को हो आये॥

रोहतक १०-४-४७

"नवाव अच्छन मियाँ रामपुरवालोका जिक्र आपसे किया था ना? वह जिनका 'सर्द-मुहरी'वाला शेअर था। आज सुवह न जाने किस धुनमे बैठा था कि उनका एक और शेअर याद आया। अव तो खैरसे अंग्रेजी राजका वह हाल है कि—

सागरको मेरे हाथसे लेना कि चला मैं।

वर्ना नवाबसाहबका यह शेअर अंग्रेजके ९० सालके शासनपर कैसी यथार्थ टिप्पणी है—

असीरीका यह एहतमाम अल्लाह-अल्लाह!
नशेमन भी है ज़ेरे-दाम अल्लाह-अल्लाह॥

शेअर सुनकर दाद नही दी तो या तो मुझपर बदमज़ाकीका इल्ज़ाम आयेगा या आपपर वदजौकीका।

होश्यारपुर ११-१-५०

"आप कल चले गये और दिनचर्य्यामे जैसे एक रिक्ति-सी हो गई। वह साहिरकी रुबाई तो याद है ना?

चन्द कलियाँ निशातकी चुनकर
मुद्दतों महवे-यास रहता हूँ

तुझसे मिलना ख़ुशीकी बात सही।
तुझसे मिलकर उदास रहता हूँ

होश्यारपुर १७-११-५१

[पत्रोत्तर देना आपको स्मरण नही रहा तो याद आनेपर केवल यह शेअ़र लिख भेजा—]

लीजिए चचा (गालिब) का एक शेअ़र सुनिए—

मैं बेख़ुदीमें भूल गया राहे-कूए-यार।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं॥

लुधियाना १७-३-५२

[सुमत साहबके पत्रोत्तर न देनेपर मैं भी उन्हें पत्र नही लिख सका तो आपने पत्रमे सिर्फ यह लिखा।]

"आख़िर गुनाहगार हूँ काफ़िर नही हूँ मैं"

लुधियाना १६-९-५२

[मेरे एक पत्रके जवाबमे—]

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिजाज
कहना ही पड़ा "शुक्र है परवर्दिगारका"

लुधियाना १०-१-५३

नौ-भेद न हो इनसे, ऐ रहरवे-फ़रज़ाना।
कम-कोश तो हैं, लेकिन बेज़ौक़ नहीं राही॥

—इक़बाल

लुधियाना २५-७-१९५३

"देख रहा हूँ कि आप बहुत नाराज़ हैं। इस बातपर न मुझे तअ़ज्जुब है न रज। इसलिए कि मैं खुद भी अपने आपसे बेहद नाराज़ हूँ।

मैं कि अज़-रूए-नंगे-बेनूरी
हूँ ख़ुद अपनी नज़रमें इतना ख़्वार
कि मैं अपनेको गर कहूँ ख़ाकी
जानता हूँ कि आये ख़ाकको आ़र।

यह लम्बी कहानी कभी लिखी जा सकी तो लिखूँगा।"

अमृतसर ४-३-५४

[मुझे पत्र देनेमे बिलम्ब हुआ तो इस तरह मुझे स्मरण किया—]

मेरे ख़यालमें यूँ तेरी याद आती है।
कि जैसे साज़के तारोंमें रागिनीका ख़िराम॥
कि जैसे गुँचए-नौरसमें क़तरए-शबनम।
कि जैसे सीनए-शाइरमें बारिशे-इल्हाम॥

——सर्दार जअ़फ़िरी

अमृतसर ६-१०-५४

लीजिए एक शेअ़र सुनिए—

ग़मे-हयातके पैकर बदलते रहते हैं।
वही शराब है साग़र बदलते रहते हैं॥

और एक अदमका शेअ़र है। जिसने तडपा-तडपा दिया है। आपका शायद पढा हुआ हो—

आ ऐ ग़मे-दौराँ ! दरे-मैख़ाना है नज़दीक।
बैठेंगे ज़रा चलके वहाँ बात करेंगे॥

होश्यारपुर ४-८-५५

[अर्सेतक पत्र न लिखने पर किस मजेका तअ़ना दिया है—]

"लीजिए उस्ताद दागका, एक पुराना शेअ़र सुनिए—

देखो-देखो मुझपै बरसाते रहो तीरे-निगाह।
सैद जिस दम आँखसे ओझल हुआ, जाता रहा॥

होश्यारपुर २१-४-५५

"आपने तो पत्र लिखनेकी जैसे कसम खा ली हो। ऐसे भी कोई नाराज होता है—

बारहा देखी है उनकी रंजिशें।
पर कुछ अबकी सर गिरानी और है॥

देहली आये, प्राय: एक सप्ताह ठहरे। खबर भी न दी। लीजिए पिछले दिनों एक मजेदार शेअ़र सुना था, आपकी नज़र है—

भला यह बताओ कि फिर क्या बनेगा?
मनाते-मनाते जो हम रूठ जाएँ॥

पिछले दिनों नवाशहर जाना पडा। वापिसीमे गढ़शकरके डाक-बँगलेमे कुछ देरके लिए ठहरा। वे तीन-चार दिन आँखोंमे फिर गये, जब उस बँगलेमें बैठकर गालिब-नामा तैयार किया जा रहा था।

मुझे याद है वह ज़रा-ज़रा, तुम्हें याद हो कि न याद हो

अनूवर साबिरीके दो शेअ़र सुनिए—

किसने आवाज़ दी, रोते-रोते?
चौंक उठा हुस्न भी सोते-सोते॥
दर्दे-दिलकी मुझे फिक्र क्यों हो?
हो ही जायेगा कम होते-होते॥

आजकल क्या कुछ लिखा जा रहा है। प्रूफरीडरोकी लिस्टसे तो शायद मेरा नाम सदाके लिए कट चुका होगा[1]—

तुम जानो तुमको गैरसे जो राहो-रस्म हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

होश्यारपुर २६-४-५५

"मै दो दिनके लिए लाहोर चला गया था। राजा गुलाममहदी और अन्वर साहबसे मुलाकात रही। एक छोटी-सी मुशाइरेकी मोहबत भी बन गई। हफीज जालन्धरी आये हुए थे। उनकी जबानमे अब भी वही पहिलेका-सा जादू ह। छोटी बहरमे एक गजल पढी। तडपा-तडपा दिया। चार शेअर जो हाफिजेमे महफूज रह गये, हाजिरे-खिदमत है—

सिमट आये है घरमें वीराने।
तू किधर जा रहा है दीवाने॥
सुबह होते ही हो गये रुखसत।
शमअके जॉ-निसार परवाने॥
कर रहा हूँ तलाश अपनोकी।
जबसे गुम हो गये है बेगाने॥
बढ़ गई बात अर्जे-मतलबपर।
मुख्तसर यह कि वोह नहीं माने॥

हरिसदन मंसूरी १५-९-५५

[मेरे पत्रोत्तर न देनेपर उलाहनेमे केवल यह पत्र लिखा—]

---

[1]आपने शेरो-शाइरी और शेरो-सुखन पाँचो भागोके प्रूफ अत्यन्त परिश्रमसे देखे। आपको वहम है कि शायद आगेके हिस्सोके प्रूफ आपको न भेजूं। मगर जब आगेके हिस्से कम्पोज ही नही तो प्रूफ कहाँसे भेजता? उसीका उलाहना है।

लालेकी खन्दारूईपै सबकी नजर गई।
दागे-जिगर कि राजे-निहाँ-का-निहाँ रहा॥

—दीवान

सख्तियाँ बढ़ रही हैं आलमकी।
हौसले मुस्कराये जाते हैं।

—खुर्शीद

अगर्चे पीर होगये, गई न इश्क़-बाजियाँ।
कि मुख्तसर न हो सकीं उम्मीदकी दराजियाँ॥
गिरह्में गो दिरम न थे, मिली शराब बेतलब।
रहेंगी याद साकिया! तेरी गदा-नवाजियाँ॥
जो उनके दरपै जा रहे तो कोई खास बात थी।
वगर्ना जानते है सब हमारी बेनियाजियाँ॥

—दीवाना

होश्यारपुर ७ जून १९५५

"लाहोरकी क्या पूछते हो? पुराने दोस्तोमे अन्वर और गुलाममहदीके अलावा कोई नही मिला। खुर्शीद रावलपिण्डीमे है, सबा और अशरफ़ कराचीमे। मुद्दतो बाद जो जाना हुआ तो शौकका यह आलम था कि हर अजनबी पर हबीबका गुमान होता था। और उन लोगोकी खातिरदारी और मुहब्बत देखकर जी भर-भर आता था।' चार शेअर सुनिए—

उस दौरसे जीनेकी दुआ माँग रहा हूँ।
जिस दौरमें मरनेकी दुआ काम न आये॥
काम आया न तूफ़ाने-बहारौंमें नशेमन।
सब कामके तिनके थे, मगर काम न आये॥

—'सबा'

चिरागे-हुस्न जलाओ बहुत अँधेरा है।
नक़ाब रुखसे हटाओ बड़ा अँधेरा है।

जिसे खिरदकी जबाँमे शराब कहते है।
वह रोशनी-सी पिलाओ बड़ा अँधेरा है।

—अज्ञात

उक्त उदाहरणोमे स्पष्ट हो गया होगा कि गज़लका शेअ्र अपनेमे कई-कई भाव सँजोये हुए होता है। हर व्यक्ति अपनी रुचिके अनुसार उसके भाव ग्रहण करता है।

'मीर'के दो शेअ्र सुनिए —

असबाब मुहैया थे, सब मरने ही के लेकिन—
अब तक न मुए हम जो, अन्देशा कफ़नका था ॥

———

इश्ककी सोजिशने दिलमें कुछ न छोड़ा क्या करें।
लग उठी यह आग नागहाँ कि घर सब फुँक गया ॥

मीरने न जाने किस आलममे यह शेअ्र कहे होगे और आपका जौके-सलीम न जाने क्या असर कुबूल करेगा। मगर मुझे तो पहिला शेअ्र मुस्लिमलीगी मिनिस्ट्रीके युगमे पडे हुए बगालके अकालकी याद ताजा कर रहा ह। अकालकी विभीषिकाने मरनेके सब साधन उपलब्ध कर दिये थे। यदि कफनपर कण्ट्रोल न होता तो हर अकाल-पीडित जीते रहनेकी लअ्नत बर्दाश्त न करके सहर्ष मृत्युका आलिंगन करता।

दूसरा शेअ्र भारत-बटवारेके समय हुए लंकाकाण्डपर कहा गया प्रतीत होता है। अब यह मेरी समझ ही तो है। वर्ना यह तो मै भी जानता हूँ कि मीरके युगमे न बगालमे अकाल पड़ा था न भारत-विभाजन हुआ था। उसने तो न जाने किस भावावेशमे कहे होगे। और यही गजलकी विशेषता है कि वह कभी अप्रासगिक नही होती। उसके शेअ्र हर मौका-महलके लिए चुने जा सकते है।

डालमियानगर
५ दिसम्बर १९५७ ई०

सिंहावलोकन

पूर्वार्द्ध

[प्रारम्भसे ई० स० १९५७ तककी इश्क़िया शाइरी]

२

१. गजलका मुख्य लक्ष्य
२. गज़लका अर्थ
३. गज़लका उपयुक्त पात्र
४. गज़लमे मिश्रण
५. इश्कके भेद
६. स्वानुभूत और काल्पनिक शाइरी
७. पाक इश्क (पवित्र प्रेम)
८. नापाक इश्क और बाज़ारी माशूक
९. हबीबका तसव्वुर (असती प्रेयसीका उल्लेख)
१०. देहलवी-लखनवी शाइरी
११. प्रेम-पात्र, पुरुष या स्त्री
१२. दाखिली-खारिजी शाइरी
१३. लखनऊकी पुरानी शाइरी
१४. गज़लकी मुख़ालफत
१५ गज़लमे स्वाभाविकता और विकार
१६. इकतर्फा इश्क
१७. गज़लका कायाकल्प
१८. ग़ज़लकी विशेपताएँ

उर्दू-शाइरीके आदि कवि 'वली' दक्खनी (१६६८—१७४४ ई०)से लेकर वर्त्तमानकालीन 'मजाज' लखनवीतक केवल इश्क ही गजलका प्रधान और मुख्य विषय रहा है। मानवमे-से आत्मा निकलनेपर पुद्गल तो शेष बचता है, परन्तु गजलमे-से इश्क निकाल दिया जाय तो कुछ भी बाक़ी नही रहता। इश्क ही गजलकी आत्मा एव जिस्म है। गजल-गो शाइरोके अतिरिक्त नज्म-गीत-गो शाइरों, यहाँ तक कि प्रगतिशील नवयुवक शाइरोंका भी इश्क एक दिलचस्प और ख़ास मौजूँ रहा है।

ग़ज़लका मुख्य लक्ष्य

ऐ 'वली'! रहनेको दुनियामें मक़ामे-आशिक़[1]।
कूचये-ज़ुल्फ़[2] है या गोश-ए-तनहाई[3] है॥

—वली

वोह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुस्ख़ये-इश्क़का[4]।
कि किताब अक़्लकी ताक़पर[5] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥

—सिराज

इश्क़-ही-इश्क़ है जहाँ देखो।
सारे आलममें फिर रहा है इश्क़॥
इश्क़ माशूक, इश्क़ आशिक है।
यानी अपना ही मुब्तला[6] है इश्क़॥
कौन मक़सदको[7] इश्क़ बिन पहुँचा?
आरज़ू इश्क, मुद्दआ[8] है इश्क़॥

---

[1]प्रेमियोके रहने योग्य स्थान; [2]प्रेयसीकी लटे अथवा प्रेयसीका कूचा; [3]एकान्त स्थान; [4]प्रेमपाठ; [5]आलेपर; [6]आशिक; [7]लक्ष्यको; [8]अभिप्राय।

इश्क है तर्ज़े-तूर इश्क़के तईं।
कही बन्दा कहीं ख़ुदा है इश्क[1]॥

—मीर

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका[2] मज़ा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बे दवा पाया[3]॥

—ग़ालिब

कोई समझे तो एक बात कहूँ।
इश्क तौफीक[4] है, गुनाह नहीं॥

—फ़िराक़ गोरखपुरी

मकामे-इश्कको हर आदमी 'सीमाब' क्या समझे?
यह है इक मर्त्तबा जो मावरायें-आदमीयत[5] है॥

—सीमाब अकबराबादी

मुहब्बतका इस पीरसे दर्स लो।
ख़सो-ख़ारसे[6] भी मुहब्बत करो॥
मुहब्बतकी दुनियामें गुंचे खिलाओ।
शरारे बुझा दो, सितारे उगाओ॥

---

[1]ख़ुदा मुहब्बत है और मुहब्बत ख़ुदा है—इजील। [2]जीवनका; [3]प्रेम-रहित जीवन निरर्थक है। प्रेम ही मनुष्यमे जीवन डालता है। 'गालिब' फ़र्माते हें—इश्ककी वजहसे हमको जीस्त (ज़िन्दगी) का मज़ा आया। बगैर इश्क तो यह ज़िन्दगी दर्द (दूभर) थी। इश्क इस दर्दकी दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना है कि इश्ककी कोई दवा नही, यह स्वय एक असाध्य रोग है। [4]योग्यता; ईश्वरकी देन; [5]मनुष्यतासे भी बढ़कर; [6]घास-काँटोसे।

न हिन्दू, न गबरू,[1] मुसलमाँ बनो।
अगर आदमी हो तो इन्साँ बनो॥
नहीं तो हलाकतमें[2] ढल जाओगे।
ख़ुद अपने जहन्नुममें जल जाओगे॥

—जोश मलीहाबादी

इश्कका ज़ौके-नज़ारा[3] मुफ़्तमे बदनाम है।
हुस्न ख़ुद बेताब है, जलवा दिखानेके लिए॥

—मजाज़

गज़लका अर्थ

इश्क ही गजलका प्राण, मन और शरीर सब कुछ होनेका कारण यह है कि गजलके शाब्दिक अर्थ ही इश्किया अशआर कहने और औरतोकी बाते करनेके है। गजल यूँ तो अरबी-भाषाका शब्द है, मगर ईरानियोने इसे विशेष तौरसे अपनाया है। वहाँ हजार वर्षसे ज्यादा गजलका दौर-दौरा रहा। 'रूदकी' जो कि ९१० ई० के लगभग जन्नतनशी हुआ, गजलका बडा उस्ताद था। फारसी-पुस्तकोमे गजलकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

सुख़न अज़ ज़नान (या अज़ माशूक) गुफ़्तन

जिसका सही अर्थ है—"औरतोकी बाते करना, यानी औरतोका जिक्र करना।" लेकिन प्रारम्भमे किसी लेखकने 'अज' शब्दके भ्रममे पडकर गजलका अर्थ 'औरतोसे बाते करना' लिख दिया और बादके लिखनेवाले उसी भूलको दोहराते रहे[4]। यदि 'औरतोसे बाते करना' कहना अभीष्ट होता तो—**सुख़न-बा-ज़नान कहते न कि अज़ ज़नान।**[5]

---

[1]अग्निपूजक; [2]मृत्युकी तरफ पतितोन्मुखी अवस्थामे; [3]देखनेकी उत्सुकता; [4]उर्दू-कोशमे भी यह गलती होनेके कारण हमने स्वय पहले भागमे यह भूल दोहराई थी; [5]प्रो० मसूद हसन रिजवी—निगार फरवरी १९४६, पृ० ४५।

अत. गजलका अर्थ हुआ—औरतोका जिक्र करना, उनके इश्कका दम भरना और उनकी मुहब्बतमे मरना।

माँ-वाप, भाई-वहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोसे भी मुहब्बत होती है, परन्तु इस मुहब्बतमे और गज़लके इश्को-मुहब्बतमे वहुत वड़ा

ग़ज़लका उपयुक्त पात्र

अन्तर है। जिस व्यक्तिके देखने-सुननेसे काम-वासना उदित हो, उसके सम्वन्धमे अपने मनोभावोको, जिस कवितामे प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गजल कहते है। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्विक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गज़लका विषय नही।[1]

काम-वासना सम्वन्धी चाहे जैसे विचार, चाहे जैसी भाषामे, चाहे जिस ढगसे व्यक्त कर देनेसे गजल नही वनती। गज़लका अपना छन्द-शास्त्र और व्याकरण है। अपनी ख़ास ज़वान, तर्ज़े-अदा और लवोलहजा है। उसका अपना सीमित और विशेष क्षेत्र है। अत्यन्त कोमल और रसभरी भावनाओसे उसका निर्माण होता है।

वर्त्तमानयुगीन गजलमे तो सभी तरहका मिश्रण पाया जाता है, अव वह सिर्फ इश्किया शाइरीतक ही सीमित नही रही। उसका क्षेत्र

ग़ज़लमें मिश्रण

व्यापक हो गया है। धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी भावोका उसमे समावेश हो गया है और वह हर समयोपयोगी विचारोको ग्रहण करनेकी क्षमता रखती है। लेकिन सवसे पहले गजलमे तसव्वुफ (ईश्वरीय भावो) और फलसफे (दार्शनिक विचारो) का मिश्रण हुआ। इन मिश्रण करनेवालोमे दो प्रकारके शाइर थे।

एक वे जो दिलमे इश्ककी आग रखते थे और उसे व्यक्त करनेवाला

---

[1]विशेष जानकारीके लिए देखे शेरोसुखन पहला भाग, पृ० २३५-७४।

मस्तिष्क और हृदय भी। मगर उस आगको जाहिर कर सकनेका हौसला उनके पास नही था। सामाजिक बन्धनोसे सघर्ष करने, पारिवारिक मर्यादाओको तोड़कर कूचये-इश्कमे कदम रखने और मैख़ानेकी तरफ मुँह करनेका उनमे साहस नही था, और न उनमे इतनी सामर्थ्य थी कि वे अपने इश्कको सीता-राम, राधा-कृष्ण, सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, पृथ्वीराज-सयोगिता—जैसा पवित्र प्रेम बना सकते। वे किसीकी चितवनसे घायल होकर अपने घावोंपर कल्पित ईश्वररूपी प्रेयसीकी मुसकानका मरहम लगाते रहे, और उनकी प्यासी आत्मा लग-जिश खाकर किसीके क़दमोंमे गिरनेके बजाय कौसरो-तसनीमकी मृग-मरीचिकासे अपनी प्यास बुझाती रही। बकौल नियाज फतहपुरी—"जो गुनाह वे यहाँ न कर सकते थे, उसे दूसरी दुनियापर उठा रक्खा। जहाँ दुनियाका हर गुनाह अतैया-ए-ख़ुदाबन्दी (ईश्वरीय देन) की हैसियत अख़्तियार कर लेता है।"[1]

दूसरे वे शाइर जो आलमे-शबाब (जवानी) मे तो मनचाहे गोते खाते रहे, परन्तु अन्तमे वृद्धावस्था और शक्तिहीनता आदिके कारण 'अल्लाहू' 'अल्लाहू' पुकारने लगे। यानी उनका इश्क इहलौकिकसे पारलौकिकमे परिणत हो गया और यही पारलौकिक इश्क हकीकी, रुहानी, सूफियाना, आदि भिन्न-भिन्न नामोसे मशहूर होता गया; और दुनियावी इश्क, मजाजी इश्क कहलाने लगा।

इसप्रकार गजल-गो शाइर—**हक़ीक़ी और मजाज़ी**—दो शाखाओमे विभक्त हो गये। सर्वसाधारण इसी ससारमे उत्पन्न अपने-जैसे हाड-मासमे बनी प्रेयसीसे प्रेम करना चाहते हैं। हकीकी शाइर भी अपने निराकार ईश्वरका ज़लवा इसी दुनियावी प्रेयसीके रूपमे साकार देखना चाहता है। अतः

इश्क़के भेद

---

[1]निगार, जनवरी १९४१, पृ० ४।

इन सूफी शाइरोने अपने इश्कके इज़्हारके लिए उन सभी उपमाओं, उदाहरणोका उपयोग किया, जो मानवी-प्रेमसे सम्बन्धित है।

> बे-हिजाबी यह कि हर ज़र्रेमें जलवा आशकार।
> इसपै घूँघट यह कि सूरत आजतक नादीदा है[1]॥
> हश्रमें मुंह फेरकर कहना किसीका हाय-हाय—
> "'आसी'-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना बख़्शीदा है[2]॥"

उक्त दोनो शेर प्रसिद्ध सूफी शाइर 'आसी' गाजीपुरीके है, जिनका परिचय शेरोसुख़नके तीसरे भागमे दिया गया है। 'घूंघट' और 'मुंह फेरकर' शब्द प्रकट करते है कि शाइरके मस्तिष्कमे किसी घूंघटवाली हया-परवर नारीका तसव्वुर है जिसने अपनी मानसिक यौन-सम्बन्धी भूखको ईश्वरीय-प्रेमकी आडमे शान्त करनेका विफल प्रयास किया है। इन्हीका एक शेर और है—

> तुम्हीं सच-सच बताओ, कौन था शीरींके पैकरमें ?
> कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमें कोई कोहकन[3] क्यों हो ?

इस शेरके भावसे प्रकट होता है कि शाइरके समक्ष वार्तालाप करते हुए, ईश्वर मानवी-प्रेयसीके रूपमे उपस्थित है। 'रियाज़' ख़ैरावादीने इसी कल्पनाको और भी मोहकरूप दिया है—

---

[1]ईश्वरकी बे-हिजाबीका यह आलम है कि वह कण-कणमे नज़र आ रहा है। फिर भी मुँहपर घूंघट इस गज़बका है कि आजतक उसकी सूरत देखनेमे नही आई।

[2]हश्रमे ख़ुदाके सामने पहुँचे तो उसने हमे देखकर मारे हयाके अपना मुँह फेर लिया और चुपके-से बोला—"यह तो वही मेरा गुस्ताख़ आशिक 'आसी' है, जिसकी उद्दण्डताएँ क्षमा करने योग्य नही।"

[3]शीरीका आशिक फरहाद।

हम आँख बन्द किये तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वह आ जाय तो क्या हो ?

यहाँ भी 'छम' शब्द किसी इन्सानी परीपैकरके नूपुरोंकी 'छम-छम' शब्दका तसव्वुर है, और सचमुच कही निराकार ईश्वरका दिव्यदर्शन किसी मोहिनीके रूपमे हो सके तो, उस प्रेमीके भाग्यका क्या कहना ? इसी भावको सर इकबालने कभी यूँ व्यक्त किया था—

कभी ऐ हक़ीक़ते-मुन्तज़िर ! नज़र आ लिबासे-मजाज़में।
कि हज़ारों सज्दे तड़प रहे हैं, मेरी जबीने-नियाज़में[1]॥

और एक शाइरने इसी भावको इस प्रकार कहा है—

यह बजा कि ख़िलवते-दिलमें है, तू हज़ार रंगसे जल्वागर।
ज़रा आके सामने बैठ जा कि नज़रको ख़ू-ए-मजाज़[2] है॥

और यह ख़ूए-मजाज ही एक रोज इन्सानको वनो-पर्वतोकी ख़ाक छनवाती है, सर फोडनेको मजबूर करती है, खूनके आँसू रुलाती है। दो-दो कौडीके आदमियोकी नसीहतें सुनवाती है। आशिके-मजाजीको कूचये-इश्कमे जो रुसवाइयाँ नसीब होती है, कौटुम्बिक और सामाजिक सघर्षोंसे जो टक्करे लेनी पडती है, वह आशिके-हकीकीके भाग्यमे कहाँ ?

यूँ तो आशिके-हकीकी भी अपने हबीब (खुदा) का तसव्वुर (ध्यान) आशिके-मजाजी जैसा ही रखता है। वह भी उसे किसी घूँघटकी ओटमे छमछमवालीके रूपमे देखना चाहता है। मगर दोनोके इश्क़मे पृथ्वी-आकाश-का अन्तर है। आशिके-हक़ीकी मस्जिद या ख़ानकाहमे बैठा हुआ अपने

---

[1]निराकार ईश्वर, कभी तो साकार रूपमे नजर आ, मेरे विनम्र मस्तकमे तेरे दर्शनके लिए हजारो सजदे बेचैन और उत्सुक है।
[2]प्रत्यक्ष देखनेका अभ्यास।

हवीबके तसव्वुरमे रोने-हँसनेके सिवा और कुछ भी नही करता। न वह आशिके-मजाज़ीकी तरह हिज्रे-यारमे तारे गिननेको मजबूर है, न आहो-फुगाँसे ही उसे कभी वास्ता पडता है। न कभी उसे विरह-ज्वर ही सताता है, न कभी उसे अपने हवीवकी यादमे एडियाँ रगड़नी पड़ती है। न कभी उसे हवीवकी जुदाईमे तिल-तिलकर घुलनेका अवसर मिलता है और न कभी उसको प्रेयसीकी झिडकियाँ सहने, रूठने-मनानेके काबिले-रश्क (ईर्ष्या-योग्य) दिन ही देखने नसीब होते है। और न 'मीर' की तरह उसे यह कहना मयस्सर होता है—

इस आशिकीमें इज्ज़ते-सादात भी गई

जो शऊर और तौर-तरीका इश्के-मजाजीमे नसीब होता है, वह इश्के-हकीकीमे मयस्सर कहाँ ? बकौल मीर—

इश्क बिन यह अदब नहीं आता

इसीलिए बहुत-से आलोचक हकीकी रगको इश्किया शाइरी माननेको तैयार नही। वे इसे हकीकी, रुहानी, सूफियाना, तसव्वुफ और मारफतकी शाइरी कहते है, मगर इश्किया शाइरी माननेको हरगिज तैयार नही।

अब हम उस इश्किया शाइरीका ज़िक्र करते है, जो इश्के-मजाज़ीसे ताल्लुक रखती है, और जिसका हवीब कोई खुदा या ईश्वर नही, बल्कि इसी दुनियाका परीपैकर है। इस किस्मकी शाइरीके भी शाइर दो समूहोमे विभक्त किये जा सकते है। एक वे जिन्होने स्वानुभवको अपने कलाममे व्यक्त किया। दूसरे वे जिन्हे कभी किसीकी तिर्छी नज़रसे न तो घायल होना नसीब हुआ, न कभी पीरे-मुगाँकी चौखटपर सर टेकना मयस्सर हुआ। नकली आशिक-ओ-मैख्वार बने हुए रवायती शाइरी करते रहे। उम्रभर किसीके

स्वानुभूत और काल्पनिक

गमे-हिज्रमे आँखसे एक आँसू तक न टपका, मगर शाइरीमे दरिया बहा दिया—

अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें[1] वर्ना इस क़दर कब घेर था?

—दर्द

बरस ऐ अब्र[2]! जितना चाहे तू, अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया बहाता था!

—जिया

चार-पाँच आदमियोकी जितनी खूराक खा जाये, दो-दो नौकर जिनके जूठे बर्तन उठा पाये, कवी-हैकल होनेकी वजहसे दुमकटे भैंसे कहलाये। फिर भी फिराके-यारमे यह कहनेसे बाज न आये—

इन्तहा-ए-लाग़रीसे[3] जब नजर आया न मैं।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिए[4]"॥

—नासिख़

चाहे उम्रभर एक रोजको भी बुख़ार न आया हो, पर शाइरीमे तपे-इश्कमे ऐसे जले कि मुर्दोंमे जान डाल देनेवाले ईसामसीहने नब्ज़ देखी तो उनकी भी नब्ज जल उठी—

नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़े-मसीह।
तेरे बीमारे-मुहब्बतका मदावा[5] कैसा?

—अमीर मीनाई

---

[1]जगलोमे; [2]बादल; [3]अत्यन्त निर्बलताके कारण, [4]यह शेर उन नासिख़का है, जो ४-५ आदमियों जितना खाना भी खाते थे और दुमकटे भैंसे भी मशहूर थे; [5]इलाज असम्भव है।

गमे-इश्कका सदमा कभी लमहे भरको न उठाया, न कभी किसीकी यादमें नींदें उचाट हुईं, मगर कहते यही रहे—

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा गुज़रा[1]॥

—सोज़

उम्रभर इमामे-मस्जिद बने रहे, हरसाल हजको जाते रहे, मगर दूनकी यही हाँकते रहे कि कूच-ए-बुताँमें बिस्तर लगाये बैठे हैं—

मुझ बे-नवा-गदाको[2] पूछे 'अमीर' वोह क्या ?
शाहोंके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं॥

—अमीर मीनाई

कभी एक वक्तकी नमाज़ कजा नहीं की, बूंदभर शराब हलकके नीचे न उतारी, मगर वज़ू करते हुए भी मश्के-सुख़न यही था—

धोना है दागे-जाम-ए-अहराम[3] सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

---

[1]बाज आया, [2]ख़ामोश फकीरको, [3]'जामये-अहराम' उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर काबेकी परिक्रमा की जाती है। जामये-अहराम पहननेके बाद भी शाइर शराब पी बैठा और वह पवित्र वस्त्र शराबसे खराब कर लिया। अब शाइरकी दूसरी शोखी देखिए कि वहींके धर्माचार्यसे उसे साफ करनेको पानी मँगवाता है। यह शेर उन्हीं 'रियाज़' साहबका है, जिन्होंने न कभी शराब छुई न कभी नमाज़ कज़ा की।

यहाँ तक कि बहुत-से शाइरोंने तो ८-१० सालकी उम्रमे ही शेर कहना प्रारम्भ कर दिया। जब कि वे यह भी न जानते थे कि माशूक है किस मर्ज़की दवा ? और उनके शेर पढिए तो मालूम होता है कि कोई खुर्राँट आशिक आप बीती दास्ताने-जहरे-इश्क बयान कर रहा है। अधिकाश गजले ऐसे ही अनुभव-हीन नकली आशिक-शाइरों-द्वारा कही हुई है। यही कारण है कि हृदयस्पर्शी अशआर बहुत कम देखनेको मिलते है और रवायती एव कल्पित शाइरीकी भरमार है। चूंकि गजल नाम ही इश्कका है, इसलिए इस स्कूलमे जो भी दाखिल होगा इश्किया शेर कहेगा। इस स्कूलका श्रीगणेश ही हुस्नो-इश्कसे होता है। हरजाई, अदू, कासिद, दरबान, जालिम, बेवफा कातिल, नाला-ओ-फुगाँ, वस्लो-हिज्र आदि इसकी वर्णमाला है। चन्द दिनके अभ्याससे ही विद्यार्थी महारनी लेने लगता है। इस स्कूलका स्नातक चाहे मजनूँ हो, चाहे जाहिदे-खुश्क अथवा कमसिन छोकरा। थोड़े दिनके अभ्यासके बाद इश्किया शाइरीका प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। चाहे उनकी योग्यता और अनुभवमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर हो।

अनुभवहीन एव फर्जी तथा स्वानुभवी आशिकोकी शाइरीको भी दो हिस्सोंमे तक़सीम करना होगा। एक पाक इश्किया शाइरी और दूसरी बाजारी इश्किया शाइरी।

पाक इश्किया शाइरी वह है कि एक बार जिसको दिल दे दिया, उम्रभर उसीके इश्कका दम भरते रहे। चाहे सफलता मिले या न मिले, उसीकी यादमे उम्र काट दी। यह वह पाक इश्क है, जिसके बारेमे

पाक इश्क

इजीलमे कहा गया है कि **खुदा मुहब्बत है और मुहब्बत खुदा है**। यही इश्क़ आदमीको इन्सान बनाता है और फिर खुदाके मर्तबेको पहुँचाता है। इस इश्कमे अपने हबीबके प्रति आशिककी वही आसक्ति और पवित्र भावना होती है, जो सीताके प्रति रामकी, राधाके प्रति कृष्णकी थी।

बाजारी इश्किया शाइरी कामलोलुप, विषयासक्तोकी शाइरी है जिनकी प्रेयसियाँ—वेश्याएँ और पतिता नारियाँ है, और जो स्वय भी इस गुलशने-हुस्नमे भौरे बने मँडराते है।

हमे अफसोस है कि हम प्राचीन शाइरीसे पाक इश्किया शाइरीके उदाहरण अधिक नही दे सकते। क्योकि उर्दू-शाइरीका जन्म और विकास ही मुगलिया सल्तनतके जवालके वक्तमे हुआ। अत वे सब बुराइयाँ—विलासिता, तमाशबीनी, मैनोशी आदि सब इसमे प्रविष्ट कर गईं, जो तत्कालीन शासकोमे थी, और जिनके कारण उन्हे शासनसे हाथ धोना पडा। उर्दू-शाइरी अपने जन्मके थोडे ही दिन बाद फारसी शाइरी-का अनुकरण करने लगी थी। धीरे-धीरे उसमे वे सब अवाछनीय तत्त्व आते गये, जिससे उर्दू-शाइरी पाकीज़ा होनेके बजाय उत्तरोत्तर बाजारी और अस्वाभाविक होती गई।

हाँ तो हम पाकइश्कके उदाहरण देना चाह रहे थे। सम्भवतः उर्दू-शाइरीमे सबसे पहले इस किस्मका तसव्वुर 'मीर' के यहाँ मिलता है—

फूल, गुल, शम्सो-क़मर सारे हीं थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत[1]॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम[2]॥

इतने उन्नत विचारोको व्यक्त करनेके बाद पवित्र-प्रेमकी व्याख्या और क्या शेष रह जाती है?

---

[1]दुनियामे गुलबदनी भी है, और चन्द्रमुखी भी। मगर हम अपने दिलको क्या करे? उसे तुम ही पसन्द आये; तुम्हारे सिवा सब हेच है।

[2]विश्व-सुन्दरियोमे तुम्ही एक हमारी प्रियतमा हो, तुम्ही हमारी अभिलाषा हो, तुम्ही हमारे जीवनका लक्ष्य हो।

'आतिश' ने अपनी प्रियतमाकी पवित्रता इन शब्दोमे व्यक्त की है—

चश्मे-ना-महरमको बर्क़-हुस्न कर देती थी बन्द।
दामने-इस्मत तेरा आलूदगीसे पाक[1] था॥

'जौक़' ने भी कैसा अछूता और पाकीजा शेर कहा है—

मैं ऐसे साहिबे-इस्मत परी-पैकरपै आशिक़ हूँ।
नमाजें पढ़ती है हूरें, हमेशा जिसके दामनपर[2]॥

प्राचीन शाइरोके हमने ऊपर चार शेर नमूनेके तौरपर दिये हैं, ताकि मालूम हो सके कि पाकीजा इश्कसे हमारी क्या मुराद है। वर्त्तमान युगीन शाइरोके इस किस्मके हजारो शेर उनके कलाममे यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर होगे, और कुछ ऐसे अशआर प्रसगानुसार हम आगे भी देगे।

नापाक इश्क़ और बाजारी माशूक़

हम समझते है बाजारी इश्किया शाइरीके उदाहरण देनेकी आवश्यकता नही। केवल कोकशास्त्रका नाम ले देने मात्रसे विज्ञ मनुष्य समझ जाते है कि उसके अन्दर क्या भरा हुआ है। गजलका माशूक प्राय: इन विशेषणोसे सम्बोधित किया जाता है—

१—शोख़	६—बदजबान
२—बे-अदब	७—सगदिल
३—बे-वफा	८—जालिम
४—बे-मुरव्वत	९—हरजाई
५—बे-रहम	१०—कातिल

---

[1]तेरा शील अत्यन्त पवित्र है, उसमे कोई बाल नही आ सकता। तेरा रूप इतना तेजवान है कि कामुक व्यक्ति तुझे देख नही सकते, उनके नेत्र बन्द हो जाते है।

[2]मै ऐसी शीला सुन्दरीपर आसक्त हूँ कि जिसके आँचलपर हूरे नमाज पढनेको लालायित है।

११—जल्लाद
१२—दगाबाज
१३—जालसाज
१४—वायदा-फरामोश

ऐसे क्रूर, हत्यारे, दुराचारी, कपटी माशूकका तसव्वुर उर्दू-शाइरीमें कहाँसे और कैसे आया? हमारा दावा है कि किसी जल्लाद और कस्सावतककी ऐसी सन्तान चराग लेकर ढूँढनेपर भी नही मिलेगी, जिसपर उक्त सभी विशेषण मौजूँ हो सके। फिर इस तरहके अशआर किस माशूकके तसव्वुरमे लिखे गये?

शोख़

अमीर—कहा जो मैंने कि यूसुफको यह हिजाब[1] न था।
तो हँसके बोले—"वोह मुँह काबिले-नकाब न था"॥

दाग़— जब यह सुना कि दाग़का आज़ार[2] कम हुआ।
ज़ानूपै हाथ मारके बोले—"सितम हुआ"॥
अयादतको[3] मेरी आकर वोह यह ताकीद[4] करते हैं—
"तुझे हम मार डालेंगे, नहीं तो जल्द अच्छा हो॥"

दर्द— फिरते हो सज बनाये, तो अपनी इधर-उधर।
लग जाय देखिए न किसीकी नज़र कहीं॥

अमीर मीनाई—
यह कज़ा[5] है कि अदा आपकी सुब्हान अल्लाह!
सफ़[6] उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं!

बेअदब

इंशा— पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह?
तो बोले हँसके—"यह भी है इक गुलाम मेरा॥"

---

[1]शर्म, लाज; [2]दुख, [3]रोगीका हाल पूछनेको; [4]आदेश, हुक्म, चेतावनी देते हैं; [5]मृत्यु; [6]नमाज़ियोकी कतारें।

अफ़सोस— सूरत तुझे हक़ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी ज़री-सी॥

बेवफ़ा

असर देहलवी—

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर[1]।
मुझको मेरी वफ़ा[2] ही रास नहीं॥

दर्द— नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाईका तेरी हरगिज़।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो॥

दाग़— ख़ुमार-आलूदा[3] आँखें बल जबींपर[4] दर्द है सरमें।
रहे तुम रात-भर बेचैन किस कम्बख़्तके घरमें?

हज़ारों आते-जाते हैं किसीसे कुछ नहीं मतलब।
फ़क़त इक चौकसी करता है उनका पासबाँ[5], मेरी॥

बेमुरव्वत

क़ायम चाँदपुरी—

ज़ालिम-ख़बर तो ले कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँ-ओ-मुज़तरब[6] पसे-दीवार[7] है कोई॥

बेरहम

क़ायम चाँदपुरी—

समझके शीश-ए-दिलको पटकियो ऐ बुते-मस्त!
बजाय बादा[8] लहू है, इस आबगीनेमें[9]॥

---

[1]दोष; [2]नेकी; [3]नशीली; [4]माथेपर; [5]दरबान; [6]चीखता, तड़पता; [7]दीवारके पीछे; [8]शराबके बजाय; [9]प्यालेमे।

अमीर मीनाई—

वोह् बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्ले-आमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब,[1] न था॥

बदज़बान

इंशा— ख़याल कीजिए क्या आज काम मैंने किया।
जब उसने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

मोमिन— लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कह ले इसी तरह॥

दुश्नामे-यार[2] तब-ए-हज़ींपर[3] गराँ[4] नही।
ऐ हमनफ़स[5] ! नज़ाकते-आवाज़ देखना॥

दाग़— मुझे कोसें, बलासे गालियाँ दें।
मगर वोह नाम लें हर बार मेरा॥

परदे-परदेमें गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते है "क्या समझे?"

संगदिल

असर देहलवी—अगर ऐसा ही अब सताइयेगा।
ख़ैर जीता मुझे न पाइयेगा॥

ताबाँ— सबब जो मेरी शहादतका[6] यारसे पूछा।
कहा कि—"अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ॥"

---

[1]क्रोध; [2]प्रेयसीकी गालियाँ; [3]क्लान्त हृदयपर; [4]बोझल; [5]साथी; [6]बलिदानका, क़त्ल होनेका।

हसरत लखनवी—

कल किसीने जो कहा "मरता है आशिक़ तेरा"।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ़ कहने लगा—"और सुना?"

मोमिन— ख़्वाहिशे-मर्ग[1] हो, इतना न सताना, वरना।
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ[2] होगा॥

दाग़— हो गया ईद उनको मेरा रोग।
क़हक़हे उड़ रहे हैं मातममें॥

ज़ालिम

दर्द— ज़ालिम जफ़ा[3] जो चाहे सो कर मुझपै तू वले[4]—
पछतावे फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं॥

दाग़— कहते हैं वोह "जलायेंगे हम तुझको हश्रतक[5]।
दुश्मनको क़ब्र तेरे बराबर बनायेंगे॥"

ग़ुबार-आलूदा[6] है पाये-हिनाई[7]।
मिटाकर आये हो मदफ़न[8] किसीका!

हरजाई

मोमिन— बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब[9] कि सुबह।
आँखोंमें शर्म थी न नज़रमें हिजाब[10] था॥

ग़ैरके हमराह[11] वोह आता है मैं हैरान हूँ।
किसके इस्तक़बालको[12] जी मेरा तनसे जाय है?

---

[1]मृत्युकी अभिलाषा; [2]इच्छा; [3]अत्याचार; [4]लेकिन; [5]प्रलयतक; [6]धूलसे भरा हुआ; [7]मेहदीसे रचा हुआ पाँव; [8]कब्र; [9]रातको [10]लाज [11]साथ-साथ; [12]स्वागतको।

अफ़सोस— कुछ बात मुझसे कर नहीं सकते, हज़ार हैफ़[1]!
मुद्दतमें तुम मिले भी तो ग़ैरोंके घर मिले!!

जुरअत— इस ढबसे किया कीजे मुलाक़ात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और!

नासिख़— हुजूम रखते हैं जाँबाज़ यूँ तेरे आगे।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो॥
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचेमें तैयार एक मरघट हो॥

दाग़— अपने दीवानोंको देखा, तो कहा घबराकर—
"यह नई वज़अ़की किस मुल्कसे ख़लक़त[2] आई?"

अनवर— न हम समझे न आप आये कहींसे।
पसीना पूछिए अपनी जबींसे[3]॥

अमीर मीनाई—
नामे[4] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[5] पढ़ेंगे।
उजलतमें[6] कुछ न होगा, नम्बर लगे हुए हैं॥
है हुक्मे-यार कोई मेरी तरफ़ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं॥

दाग़— आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रक़ीब[7]?
और दरबानोके फिकवा दिये बिस्तर बाहर?

क़ातिल

हसन— किया क़त्ल और जान बख़्शी भी की।
'हसन' उसने एहसाँ दुबारा किया॥

---

[1]अफसोस; [2]जनता; [3]मस्तकसे; [4]पत्र; [5]प्रेमियोके; [6]शीघ्रतामे; [7]प्रतिद्वद्वी।

मुसहफ़ी— खींचकर तेग़ यार आया है।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने॥

नासिख़— दोस्तो! जल्दी ख़बर लेना, कहीं 'नासिख़' न हो।
क़त्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ॥

ज़ौक़— कहे है ख़ंजरे-क़ातिलसे यह गुलू मेरा—
"कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा॥"

अमीर मीनाई—

पछता रहे हैं ख़ून मेरा करके क्यों हुज़ूर!
अब इसपै ख़ाक डालिए, जो कुछ हुआ-हुआ॥

दाग़— ज़िबह[1] करते ही मुझे क़ातिलने धोये अपने हाथ।
और ख़ूँ-आलूदा[2] ख़ंजर ग़ैरके घर रख दिया॥

अपने बिस्मिलका सर है जानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं!

मेरे मज़ारको तोदह[3] किया है तीरोंसे।
बहाना ये है कि रोज़न[4] किये हवाके लिए॥

मेरे क़त्लके रोज़ मेला लगेगा।
यह जल्सा वोह इक धूम-धामी करेंगे॥

चुटकीमें उनकी तीर निगाहोंमें उनके क़हर[5]।
क्या जाने कितनी देर हमारी क़ज़ामें[6] है?

या इलाही ख़ैर हो, बैठे हैं वोह यूँ बज़्ममें[7]।
तेग़[8] रक्खी है बराबर और ख़ंजर सामने॥

---

[1]क़त्ल; [2]रक्त रंजित; [3]छलनी; [4]सूराख; [5]क्रोध; [6]मौतमे; [7]महफ़िलमे; [8]तलवार।

जल्लाद

मोमिन— दावा-ए-तकलीफ़से[1] जल्लादने।
रोजे-जजा क़त्ल फिर अपना किया॥

दगाबाज

दाग़— लड़ती जाती है ग़ैरसे भी आँख।
मुझसे भी बात करते जाते हैं॥

रियाज ख़ैराबादी—
नज़अमें[2] यारसे पैमाने-वफ़ा[3] करते हैं।
उस दगाबाज़से हम आज दगा करते हैं॥

जालसाज

ज़ौक़— माल जब उसने बहुत रद्दो-बदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा॥

वादा-फ़रामोश

ग़ालिब— ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

दाग़— "वफ़ा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे।"
तुम्हे भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था?

गजलमे ऐसे शोख़ एव हरजाई हबीब (चचल और खण्डिता-नायिका) का तसव्वुर वेश्याकी वजहसे आया। क्योकि उन दिनो तमाश-बीनी (वेश्या-आसक्ति) जीवनका एक अग और समाजकी एक आवश्यक प्रथा वनी हुई थी। वादशाहो-नवावो, राजा-महाराजाओके दरबारोसे यह वावस्ता

हबीबका तसव्वुर

---

[1]कष्ट देनेके लिए, [2]जीवनकी अन्तिम घड़ीमे; [3]नेकी करनेका वायदा।

(सम्बन्धित) होती थी। परम्परासे चले आये इस रिवाजके कारण सद्गुणी, सुशील और आदर्श शासक भी इनका नृत्य देखते थे। यह एक ऐसी ही आवश्यक प्रथा थी, जैसी कि यूरोपमे मद्य-पान और बालडान्सकी प्रथा है।

इन शासकोंका अन्धानुकरण प्राय: सभी रईस, जागीरदार, जमीदार करते थे। वेश्याओंपर जो जितना अधिक व्यय करता था, उसकी रईसाना शान उतनी ही अधिक बढती थी। नवाब जुल्फिकारअलीने अगर दो तवाइफे नौकर रखी हुई थी तो ठाकुर रामसिहका चार तवाइफ रखना लाज़िमी था। न रखे तो फिर मूँछोपर ताव इस शानसे कैसे दिया जा सकता था? जब मनोहर पण्डित अपने लडकेकी शादीमे चार-चार तवाइफे ले गये, तब लाला उल्फत आठसे कम क्या ले जाये? बिरादरी क्या कहेगी। सरे-बाजार नाक कटानी हो तो चाहे एक भी न ले जाये! महफिल गरम हुई तो सुक्खा परचूनिये और मुशी हलवाई-जैसोंने तवाइफकी मुट्ठियाँ रुपयोसे भर दी। तब लाला मोहनलाल गिन्नियाँ न्योछावर न करे तो महफिलसे सुर्खरू होकर कैसे उठे? और जब लालाओंने गिन्नियाँ देनी शुरू कर दी तो नवाब हैदर और ठाकुर सुजानके लिए अब इसके सिवा और चारा भी क्या है कि तबलचीके तबलेको अशर्फ़ियोसे भर दे।

यह तमाशबीनी यहाँतक प्रचलित थी कि बहुत-से रईस अपने लड़कोको तवाइफोके यहाँ तहजीब सीखनेके लिए उसी तरह भेजते थे, जैसे कि वर्त्तमानमे यूरोप भेजना आवश्यक समझते है। उन दिनो यह आम धारणा थी कि बगैर इस तरहकी सुहबतमे रहे बज्मे-अदबमे बैठनेका सलीका-ओ-शऊर नही आ सकता, और जो ऐसी सुहबतोमे रहकर परवान चढते थे, वे इस रगके कैसे माहिर होते होगे, आसानीसे अनुमान लगाया जा सकता है।

वह युग ही कुछ ऐसा था कि साधारण-से-साधारण व्यक्तिको भी

लडकेकी शादीमे तवाइफका बुलाना आवश्यक होता था। लड़कीवालेकी पहली शर्त ही यह होती थी। न ले जानेपर खातिर-तवाजअमे तो अन्तर पड़ता ही था, गाँवके शोहदे पत्थर भी फेकते थे। और जिस शादीमे तवाइफ जाती थी, दो-चार छोकरोको तीरे-नजरसे घायल भी करती थी, और इस तरह यह तमाश-वीनीका रोग घर-घरमे फैला हुआ था। मै स्वयं कई ऐसे रईसोको जानता हूँ, जो करोडपति होते हुए इस शौककी बदौलत दो-कौडीके हो गये। मैने एक रईसको ऐसी स्थितिमे मरते देखा है कि दुश्मनपर भी ऐसी बला न आये। यही रईस आलमे-शबाबमे एक महफिलमे बैठे रक़्स देख रहे थे। पिता मर चुके थे। करोडो रुपयेकी दौलत हाथ लगी थी, तजुर्बा कुछ था नही, जवानीकी चौखटपर पाँव ही रखा था, कि तवाइफ़को छेड बैठे। तवाइफ भी रूप, सगीतके अलावा अपने हुनरमे यकताँ थी। वह पहलेसे ही इस वारके लिए तैयार थी, भरी महफिलमे उसने रईसजादेका माँजना झाड़ दिया। परिणामस्वरूप रईसजादेके मनमे भी बदला लेनेकी भावना उठ खडी हुई कि जैसे भी हो इसे नीचा दिखाना ही चाहिए। मीरासियोसे एकान्तमे पूछा तो उन्होने बताया "हुजूर, यह बडी पाकदामन और नमाज-रोज़ेकी पाबन्द है। नाच-गानेका पेशा तो हुनरकी ख़िदमत समझकर करती है। नवाबोतकको कोठेपर नही चढ़ने दिया, आप तो है किस खेतकी मूली?" बस फिर क्या था? नये बछेडेको एक हण्टर और लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि सारी सम्पत्ति उसके इश्कमे लुटा दी। वेश्यानृत्यकी यह प्रथा इतनी आम थी कि बडे-बड़े धार्मिक व्यक्तियोको भी खुशी आदिके अवसरोपर अनिच्छा होते हुए भी वेश्या-नृत्य कराना पडता था। खानकाहो और दरगाहोके उर्सोपर वर्त्तमानमे भी वेश्याएँ जाती है।

इन तवाइफोमे बहुत-सी शाइराएँ भी होती थी। एक तो हुस्नकी मार ही क्या कम होती है, फिर साँपको भी वज्दमे ला देनेवाला सगीत; फिर शाइराना मज़ाक, उसपर भी तुर्रा यह कि तवाइफाना अन्दाज़,

चोचले, शोखियाँ, तेवर—यह सब घरेलू पत्नीमें कहाँ? वह भोली-भाली अबलाएँ यह सब नाज़ो-अदाएँ कहाँसे लायें? मगर दिलफेक, कामुक व्यक्तियोंको तो यह सब चाहिएँ। घरमे मयस्सर नही तो बाजारमे तो है? उनकी बलासे शरीफ़ बीबी आठ-आठ आँसू रोती है तो वे अपनी उमगोका खून कैसे कर दे? घर तबाह हो रहा है, बच्चे भी उसी कूचेमे खेलना चाह रहे है, सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है, तो वे क्या करे? क्या इस चन्दरोज़ा जवानीको यूँ ही गुजार दे? नही जी, इन हुस्नके परिस्तारोसे यह हरगिज नही हो सकेगा।

दिल्लीमे ५-६-वर्ष मुझे एक ऐसे पडोसमे रहनेका इत्तफाक हुआ, जिनका जवान लडका कूचये-हुस्नका दिल-दादा था। घरमे सुशीला रूपवती देवी-जैसी पत्नी, मगर दिल एक तवाइफके जुल्फ़े-पेचॉमे फँसा हुआ था। बीबी पूजा-पाठकी पाबन्द, नेक और शरीफ़। भला वह तकल्लुफ, अन्दाज़, तर्ज़े-गुफ़्तगू कहाँसे लाये, जो तवाइफने लोरियॉ सुनते-सुनते सीख लिये थे!

पर्देकी सख़्त पाबन्दीने भी तमाशबीनीको हवा दी। इसकी वजहसे किसी शरीफ़जादीसे दीदाबाज़ी नही चल सकती थी। अगर किसी मनचले-का दिल अकस्मात् किसीकी तीरे-नजरसे घायल हो भी गया तो, उसे बार-बार देखना, पत्र-व्यवहार करना, सन्देश भेजना, इश्क जारी रखना बहुत दुष्कर था। इसे हर कौममे मायूब समझा जाता था। लड़कियोंकी तरफसे तो यह पहल होती ही न थी। लड़को-द्वारा शाजो-नादिर हो जाती थी तो उसकी अक्सर मरम्मत कर दी जाती थी। इसलिए ऐसे पुरखतर कूचये-इश्कमे कोई बिरला ही सरफिरा क़दम रखता था।

मर-मरके हमने काटी हैं अपनी जवानियाँ

'मीर' के समान इस तरह रो-रोकर जवानी काटनेको भला वे कामुक शाइर कैसे प्रस्तुत हो सकते थे, जिनके यहाँ इश्कका तात्पर्य ही काम-वासना शान्त करना है।

बुलहविसी और दुआ-ए-सोज़े-इश्क[1]।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए॥

—अमीर मीनाई

ऐसे शाइर जो न तो सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेकी शक्ति रखते थे, न पारिवारिक-संघर्षका ख़तरा ले सकते थे और न अपनी काम-वासनाओंपर हावी हो सकते थे, साधारण स्तरके आदमी थे। उनकी पहुँच इन तवाइफोंके यहाँ बा-आसानी हो जाती थी, और इसी तमाशबीनीको यह लोग इश्क समझ लेते थे। यह बेचारे 'मीर'-जैसा दिल फूँकनेको कहाँसे लाते?

रोशन है इस तरह दिले-वीराँमें एक दाग़।
उजड़े नगरमें जैसे जले है चराग़ एक[2]॥

मजबूरन तवाइफोंके संगेदरपर सज्दा करना पड़ता था, इसलिए हबीबका तसव्वुर आम शाइरोंका बाज़ारी औरत (वेश्या-तवाइफ) हो गया। नामवर तवाइफोंके चाहनेवाले ज्यादा होते थे। उन्हे हर तमाशबीन नवाब और रईस अपनी बनाना चाहता था। मगर वह किसकी होकर रहती थी? मोटे आसामीको चन्द दिन फाँसा-चूसा, और दुत्कार दिया। इन चाहनेवालोंमे परस्पर प्रतियोगिता चलती थी। नाकामयाब

---

[1]विषयलोलुपसे पवित्र प्रेमकी आशा करना व्यर्थ है। पवित्र-प्रेमका साहस वही कर सकता है जो अपने हृदयको दग्ध करनेकी क्षमता रखता हो।

[2]पुराने ज़मानेमे जब किसी नगरको बादशाही अताबकी वजहसे मिसमार कर दिया जाता था, तब उस उजड़े नगरमे रातके वक़्त ऊँचे स्थानपर एक चिराग जला दिया जाता था, ताकि देखनेवाले उससे इबरत ले सकें।

उम्मीदवार अपनेको सच्चा आशिक़ और कामयाब तमाशबीनको अदू समझता था। जो ज्यादा जर लुटाता, उसीकी मुहब्बतका तवाइफ़ दम भरती। उसके सामने दूसरे चाहनेवालेको उपेक्षासे देखना पड़ता या मसलहतन बज़्मे-रक़्ससे उठवाना पड़ता तो इसे शाइर आशिक़े-सादिक़की बेइज्जती समझता! अपने स्वार्थके विपरीत तवाइफ़का जो भी बर्ताव होता, उसे वह ज़ुल्मो-सितम, जोरो-जफ़ा तसव्वुर करता था और अपने हर प्रयत्नको वफादारी समझता था।

मुझे एक ऐसे ही तमाशबीन शाइरने आप-बीती घटना सुनाई थी कि एक तवाइफ़के यहाँ जब वे रातभर रहनेकी ग़रजसे सोये हुए थे, तब उसका एक पुराना चाहनेवाला आगया और उन्हे खिसकनेको मजबूर होना पड़ा। बेचारे तवाइफ़की बेवफ़ाई और हरजाईपनका शिकवा बहुत ही दुखे हुए दिलसे कर रहे थे और मै गालिबका यह शेर मन-ही-मनमे पढ रहा था—

हमको उनसे वफ़ाकी[1] है उम्मीद!
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है!!

बाजारी इश्क़के अलावा, बेवफ़ा माशूक आदिका तसव्वुर शाइरोंने बादशाही-नवाबी दरबारोंसे भी लिया। वे शाइर जो दरबारोसे सम्बन्धित होते थे, बादशाहों-नवाबोंको हबीब, उनके मुँह लगे मुसाहबोको अदू, उनकी उपेक्षाओंको तगाफ़ुल, उनकी चीं-ब-जबीको जौरो-जफ़ा, अपनेको मजलूम-ओ-नाचार आशिक तसव्वुर करते थे और उन वाकयातको गमे-जानाँ बनाकर गजलके लबोलहजेमे बयान करते थे।[2]

---

[1]नेकीकी; [2]गजलकी सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि बातको सीधे न कहकर हुस्नो-इश्क, गुलो-बुलबुल, सागरो-साकीके माध्यमसे बयान किया जाता है। बकौल गालिब—

हर चन्द हो मुशाहदः-ए-हककी गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बगैर॥

बाज़ारी इश्क और दरबारी घात-प्रतिघाती शाइरीकी वजहसे १९ वी शताब्दीतककी शाइरीमे पाक इश्कका जज्बा बहुत कम मिलता है, और जो आटेमे नमकके समान मिलता भी है तो वह इतना घुला-मिला हुआ है कि उसे अलहदा करना बहुत दुश्वार है। खुदा-ए-सुखन 'मीर' को ही लीजिए। कही तो उनके बुलन्द इश्कका यह आलम है कि प्रेयसीके न आनेपर कोई शिकवा-ओ-शिकायत नही करते और अपने हृदयको यूँ सान्त्वना दे लेते है—

जिगरचाकी, नाकामी, दुनिया है आख़िर[1]।
नहीं आये जो 'मीर' कुछ काम होगा॥

उसकी उपेक्षाको अपने ही इश्ककी खामी समझते है—

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया।
नहीं तकसीर[2] उस ना-आश्नाकी[3]॥

उन्ही 'मीर' के यहाँ अमरद-परस्तीके (छोकरोंके प्रेम सम्बन्धी) अशआर भी पाये जाते है।

मिर्ज़ा 'गालिब'के यहाँ जहाँ ऐसे पवित्र-प्रेमका तसव्वुर है—

ऐ दिले ना-आक़बत-अन्देश! जब्ते-शौक कर।
कौन ला सकता है, ताबे-जलव-ए-दीदारे-दोस्त[4]॥

---

[1]हृदयको व्यथित करने और असफलतापर खेद करना व्यर्थ है। यह दुनिया है। प्रेयसीको भी दुनियाकी असुविधाओ-परेशानियोने न आने दिया होगा।

'मीर'का पवित्र प्रेम देखिए कि वे प्रेयसीके न आनेपर अन्य शाइरोकी तरह उसकी वादा-फरामोशीका गिला-शिकवा नही करते, अपितु अपने हृदयको उचित सान्त्वना देनेका प्रयास करते है।

[2]अपराध, खता; [3]अपरिचित प्रेयसीकी; [4]ऐ अदूरदर्शी, प्रेमी! अपनी चाहतको बसमें रख। उस सुशीला प्रियतमाके रूपको निहारनेकी सामर्थ्य किसमें है?

फ़रोग़े-शोलये-ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे-नामूसे-वफ़ा क्या[1] ?

वहाँ उनके यहाँ कही-कही ऐसे हकीर शेर भी नजर आते है—

क्या ख़ूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया!
बस, चुप रहो, हमारे भी मुँहमें ज़बान है॥

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू[2]।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा[3] किये॥

गजलमे इस तरहके दुरगे मजमून पाये जानेकी वजह यही है, कि हर शाइरकी विचार-धारा प्रारम्भसे अन्ततक यकसाँ नही रहती। बहुत कम ऐसे लोग होते है जो अपने भावोको स्थायी रख सके। कभी वे अपने चारो तरफके वातावरणसे प्रभावित होते है, और कभी अपने दिलकी मुख़्तलिफ कैफियातसे मुतास्सिर होते है। जिसे अपना वतन छोड़ना पडा हो, उम्रभर पापड़ बेलने पडे हो, वह 'मीर' यह न कहता तो और क्या कहता ?

आग थे इब्तदा-ए-इश्कमें[4] हम।
अब जो है ख़ाक इन्तहा[5] है यह॥

मेरे सलीक़ेसे मेरी निभी मुहब्बतमें।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया॥

और यही 'मीर' जब लखनऊ पहुँच जाते है, वहाँ भरण-पोषणकी चिन्ताओसे तनिक मुक्ति पाते है, और लखनऊकी रगीन फिजा एव चूमा-

---

[1]हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज्जतका पास नही हो सकता। फरोगे-शोलए-खस (घासकी आगका भडकाव) यकनफस (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नही होता।
[2]आदत; [3]बगैर माँगे; [4]प्रेमके प्रारम्भमे; [5]अन्त।

चाटीकी शाइरीके वातावरणमे साँस लेते है तो गो लाख तबीयतपर क़ाबू सही, मुँहका जायका बदलनेको अथवा होलीका भडुआ बननेको ऐसे शेर भी कह बैठते है—

मिलो इन दिनों हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम कहाँ तुम कहाँ फिर जवानी॥

देहलवी शाइरोंका जीवन अक्सर अभावो और दुश्चिन्ताओंमें व्यतीत हुआ। जब बादशाह एवं रईसोकी हालत तबाह थी, तब उनसे सम्बन्धित

देहलवी-लखनवी शाइरी

शाइरोका तो ज़िक्र ही क्या? बाल-बच्चोके भरण-पोषणकी चिन्ताओ और आकुलताओमे जिनका जीवन व्यतीत हो, उनके कलाममे दुःख, व्यथा, पीड़ा, तडप, निराशा, असफलता आदिका समावेश स्वाभाविक है।

देहलवी शाइरोमे मीर, सोज, दर्द, गालिब, मोमिन, ज़ौक आदि जितने भी शाइर चमके, वे सब मुगलिया सल्तनतके ज़वालमे चमके। वे निराशाओकी गोदमे पले, असफलताओकी लोरियाँ सुनते-सुनते जवान हुए। मुसीबते ही जिनका ओढना-बिछौना रही, उनके मुँहसे ऐसी करुणापूर्ण शाइरी न होती तो और किससे होती?

देहलवी शाइरोकी यही करुणापूर्ण स्थिति उर्दू-शाइरीके लिए वरदान साबित हुई। दुःख-दर्द, व्यथा-पीड़ा ही शाइरीके मुख्य अग है। यह न हो तो शाइरी अपाहिज है। सुख शाइरके अन्तस्तलमे दबे हुए विकारोको उभारता है। दुःख शाइरके उच्च भावोंको जागृत करता है। सुखान्त दृश्य मनको क्षणभरके लिए स्पर्श करता है। दुखान्त दृश्य हृदयको द्रवित करके रख देता है। सुख अस्थायी और दुःख स्थायी है। सुखकी घड़ियाँ लमहेभरको आती है और चली जाती है, दुःख जब आता है तो मरतेदमतक साथ नही छोड़ता। दुःख-व्यथामे वह पीड़ा और कसक होती है कि शाइर उनके व्यक्त करनेको मजबूर होता है। सुखमे यह सामर्थ्य कहाँ कि वह शाइरको कहनेके लिए लाचार कर सके।

मेरे रोनेका जिसमें क़िस्सा है।
उम्रका बहतरीन हिस्सा है॥
—जोश मलीहाबादी

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे-ग़म है॥
—मुहम्मदअलीख़ाँ असर

इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा होता नहीं।
सब जुदा हो जायें, लेकिन ग़म जुदा होता नहीं॥
—जिगर मुरादाबादी

लखनवी शाइरोने निराशाओं एवं असफलताओंका कभी मुँह नही देखा। जिन दिनों बादशाहत मिट रही थी, दिल्ली उजड रही थी, उन्ही दिनो अवधकी नवाबी पूरे आबो-ताबके[1] साथ चमक रही थी। लखनऊके हर गली-कूचेमे लक्ष्मी थिरक रही थी। रक्स-ओ-शराब,[2] साक़ी-ओ-मुतरिब[3] सर्वसाधारणके लिए सुलभ थे। भोग-विलास लखनवी जीवनका लक्ष्य था। दिनमे कही बटेरोकी पालियाँ बदी जाती थी, तो कही तीतरोंकी कुश्तियाँ होती थी। कही मुर्गोकी लड़ाइयाँ होती थी तो कही कनकौओके पेच होते थे। रातको कही कोकिलकठी तवायफ़ोके नग्मे[4] गूजते थे, तो कही मुशाइरोंकी वाह-वासे कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी। कही रक़्सका वह आलम होता था कि महफिल-की-महफिल झूमती होती थी। शराब पी ही नही जाती थी, बहाई भी जाती थी। लखनवियोकी हर जरूरियात सकेत मात्रमे पूर्ण होती थी। लखनऊका शाइर, ऐय्याश, शराबी और तमाशबीन था। छेड़-छाड, चुहल, मस्ती, उसका रात-दिनका मशग़ला[5] था।

देहलवी शाइरोंने आपदाओंमे जवानियाँ गुजारी थी। इसलिए उनकी शाइरीमे रजो-अलमकी[6] टीस मिलती है। लखनवी शाइरोने भोग-

---

[1]चमक-दमकके; [2]नृत्य-शराब; [3]गायिका; [4]सगीत; [5]कार्य्य, चर्य्या, शौक; [6]दु.ख-व्यथाकी।

विलासमे आँखे खोली थी, इसलिए उनकी शाइरीमे रंगीनियाँ रक़्स[1] करती नज़र आती है।

१७८० ई० पूर्व गजलमे हबीबका[2] तसव्वुर[3] स्पष्ट नही था। वह स्त्री है या पुरुष, यह निश्चय नही किया जा सकता था। क्योंकि हबीब चाहे

प्रेम-पात्र पुरुष या स्त्री

स्त्री हो या पुरुष, उसके लिए, सज्ञा, विशेषण, क्रिया, सम्बोधन आदि सब स्त्री लिंग न होकर पुल्लिग व्यवहृत होते थे। उदाहरणस्वरूप निम्न चार मिसरोको लीजिए—

है ख़बर गर्म उनके आनेकी।

जमा करते हो क्यों रकीबोंको?

तुझीको यहाँ जलवा-फ़रमा न देखा।

वोह मिला भी कभी तनहा तो मैं तनहा न हुआ।

इन मिसरोसे स्पष्ट नही होता कि ये स्त्री या पुरुष किस हबीबको तसव्वुर करके लिखे गये हैं। हबीबका अर्थ 'प्यारा' है। यानी जिसे प्यार किया जाय, वह हबीब है। पुरुष किसी युवतीको प्यार करता है तो वह युवती उसकी हबीब हुई और यदि युवती पुरुषको प्यार करती है तो पुरुष युवतीका हबीब हुआ। यदि दोनो एक-दूसरेको चाहते—प्यार करते है तो दोनो एक-दूसरेके हबीब और आशिक हुए। हकीकी शाइरोका खुदा हबीब होता है। अत. गजलके अशआर स्त्री-पुरुष दोनो ही समान रूपसे व्यवहारमे लाते थे, और शाइर स्त्री हो या पुरुष अपनेको आशिक और अपने प्यारेको हबीब समझते थे। दोनो ही अपने लिए तथा हबीबके

---

[1]थिरकती, नाचती; [2]माशूकका; [3]उल्लेख, चिन्तन।

लिए पुल्लिग शब्दोका व्यवहार करते थे। नवाब आसफुद्दौला अपने हबीबके तसव्वुरमे इस तरह लिखते थे—

कोई बात तो हमारी भी मान, अब खुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख[1]?

तो हिजाब बेगम भी यूँ हमकलाम होती थी—

रक़ीबोंकी[2] तो शबोरोज[3] सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी माहलका[4]! सुनो तो सही।।
नहीं यह खूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मै कहता हूँ, क्या सुनो-तो सही।।

शाइरीका यह ढग तो बहुत अच्छा था कि हबीवका स्पष्ट संकेत न हो और स्त्री-पुरुष दोनो ही समानरूपसे लुत्फ-अन्दोज़[5] हो सके। मगर अच्छी चीजमे भी बुरे पहलू उसी तरह निकल आते है, जिस तरह गुलाबमे काँटे। इस शाइरीमे बाज़ मनचलोने छोकरोंको भी हबीब तसव्वुर करना शुरू कर दिया और बाज़ने उनके नाम अकित करके, सब्ज़-ए-ख़त (ठोडीके बाल) टोपी, दस्तार आदिका उल्लेख करके स्पष्टत: छोकरेको हबीबका रूप दे दिया!

गज़लमे सबसे पहले 'हसरत' ने[6] नवाब आसफुद्दौलाके शासन-काल (१७७२-१७९७ ई०) में स्पष्टत स्त्रीको हबीबका दर्जा दिया। तबसे लखनवी शाइरीमे स्त्रियोचित बातोका समावेश होने लगा। लेकिन परम्पराके अनुसार क्रिया, विशेषण, सम्बोधन आदि पुल्लिग ही इस्तेमाल किये गये। यहाँ हम उदाहरण-स्वरूप प्रोफ़ेसर अन्दलीब शादानी-द्वारा संकलित जून १९५१ के निगारमे-से ४१ अशआर सधन्यवाद दे रहे है—

---

[1]कड़वा; [2]प्रतिद्वद्वियोकी (सोतोंकी); [3]दिन-रात; [4]चन्द्रमुखी; [5]आनन्दित; [6]हसरत देहलीके रहनेवाले थे, मगर लखनऊ जाकर रहने लगे थे और वही उन्होंने इस रगका आविष्कार किया था।

परदानशीं हबीब

क़रार— शायद कि कोई परदानशीं झाँक रहा है।
आज आई नज़र रोज़ने-दीवारकी[1] आँखें॥

आग़ा— नज़र पड़ी है तेरी जबसे पटकी आड़में आँख।
लगी ही रहती है, ऐ बुत! मेरी किवाड़में आँख॥

गरमाँ— हम आये तो चिलमनमें[2] लगाये गुले-नरगिस[3]।
दरपरदा दिखाता है वोह रश्के-चमन[4] आँखें॥

नज्द— लिल्लाह झरोकोसे दिखा जाइए सूरत।
मुश्ताक़[5] है अब जलवए-दीदारकी[6] आँखें॥

कैफ़— निगाहे-आशिक़े-मुश्ताक़[7] पहुँच जाती है।
लाख घूँघटको करे यार हिसारे-आरिज़[8]॥

मुहसन— हमसे कन्धा जो बदल लें तेरी डोलीके कहार।
अर्शे-आलासे[9] भी ऊँचा हो हमारा शाना[10]॥

यह परदा, चिलमन और किवाड़ोकी ओटमे ताक-झाँक, यह रोजने-दीवारो-दर और झरोखोसे नजर-बाज़ियाँ और यह डोलीकी सवारी, परदादार हबीबका स्पष्ट संकेत करती है। इस तरहके हया परवर[11] हबीबके तसव्वुरके[12] बजाय लखनवी शाइरीमे बाजारी-हबीबका उल्लेख बहुत अधिक मिलता है।

बाज़ारी-हबीब

सुहबत— हो गया हमको जुनूँ[13] टुकड़े गरेबाँको किया।
रख लिया उसने दमे-रक़्स[14] जो दामा[15] सरपै॥

---

[1]दीवारके झरोखोमे-से आँखे दिखाई दी, [2]तीलियोके परदेमे; [3]नरगिसका फूल; [4]फूलोंकी ईर्ष्या योग्य; [5]उत्सुक; [6]चमत्कार देखनेवालेकी,; [7]उत्सुक प्रेमीकी दृष्टि; [8]कपोलको घूँघट रूपी किलेमे छिपाना; [9]आकाशसे; [10]काँधा; [11]लज्जाशील प्रेयसीके; [12]चिन्तनके; [13]उन्माद; [14]नाचते समय; [15]दुपट्टेका पल्ला।

हस्साम— बे-हिजाबीमें[1] भी परदा ही रहा आशिक़से।
रक़्समें[2] भी नजर आये, तहे-दामाँ-आरिज[3]॥

फ़रोग़— क्या खुशनुमा बनाये हैं हक़ने तुम्हारे हाथ।
करते ब-वक़्ते-रक़्स हैं क्या-क्या इशारे हाथ॥

तासीर— हाथोंको नाचमें जो मुक़र्रर[4] उठाइए।
दरियाए-हुस्न[5] आपका बढ़ जाये चार हाथ॥

रक़ीब— वक़्ते-रक़्स[6] आगे बढ़ा, रखके वोह जब हाथ पै हाथ।
ग़श हुए, लोट गये, मारके सब हाथपै हाथ॥

शहीद— दस्ते-रंगी[7] जब कि दिखलाई दिया हंगामे-रक़्स।
शमए-महफ़िल जल गई, उस खुश-अदाके[8] हाथसे॥

सैर— कंगन चमकते हैं जो दमे-रक़्स हाथोंके।
हैं अहले-बज्मके[9] लिए बिजली कलाइयाँ॥

वजीर— चल रहे हैं पाँवके बिछवे अजब हंगामे-रक़्स।
करती हैं खूँरेजियाँ[10] हर-हर क़दमपर उंगलियाँ॥

मुजतर— वोह हाथ उठा-उठाके यह कहते हैं रक़्समें।
"मुजरा करें जो अब कोई हमसे बचाये दिल॥"

महर— नाचका हुस्न बढ़ गया दूना।
लचके सब ऐ हसीं कमर-कूले॥

---

[1]बेपर्दगीमे; [2]नाचनेमे; [3]घूँघटके अन्दर कपोल; [4]दुबारा, पुनः; [5]सौन्दर्यका दरिया; [6]नाचते समय; [7]मेहदी रचा हाथ; [8]मोहक अदा-वालीके; [9]महफ़िलवालोके; [10]रक्तपात।

सरूर— करते हैं सहर[1] रक़्समें उस गुलबदनके पाँव।
क्या-क्या समाँ दिखाते हैं, ताऊस[2] बनके पाँव॥

सालक— इस अदासे बज़्ममें रक़्साँ हुआ वोह रश्के-माह[3]।
बन गया घुँघरू हर इक चश्मे-तमाशा पाँवमें॥

नासिख़— रक़्समें आती नही यह तेरे घुँघरूकी सदा[4]।
करते हैं आसूदगाने-ख़ाक[5] शेवन[6] ज़ेरे-पा[7]॥

सग़ीर— सियाही पुतलियोंकी यह भी इक परदा है ज़ाहिरका।
फिरा करती है तेरी सुरमई पिशवाज़[8] आँखोंमें॥

नासिख़— आवाज़ यह होती नहीं ज़िनहार[9] गलेमें।
समझो न रगें, साज़के हैं तार गलेमें॥

मोहसन— बेहाल कर दिया मुझे गानेने आपके।
लै है बलाकी, क़हरका खटका गलेमें है॥

लखनऊके इस दौरकी सोसायटीके बाज पहलुओंपर निम्नलिखित अशआरसे रोशनी पड़ती है—

बर्क़— नीचे हम बैठे हैं कोठेपै अलग सुहबत है।
अब तो होते हैं सितम ऐ गुले-ख़न्दाँ[10] सरपर॥

ख़ल्क़— फिर हाथमें है हाथ सरे-चौक ग़ैरका।
निकले हैं रफ़्ता-रफ़्ता फिर उस सीमतनके[11] पाँव।

---

[1] जादू; [2] मोर; [3] जिसके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [4] आवाज़; [5] मिट्टीमे मिले हुए मुर्दे; [6] नाले; [7] पाँवके नीचे; [8] नाचनेकी पोशाक; [9] हरगिज; [10] फूलोकी तरह हँसनेवाले; [11] चान्दी-जैसी गोरीके।

अमानत— ग़ैरोंके नशे बज़्ममें[1] क्या-क्या हिरन हुए।
हाथ उसने जब रखा, मेरे मस्ताना दोशपर[2]॥

नासिख़— लोगोंमें होंट चूम लिये हमने, क्या किया?
ग़ुस्सेसे क्यों न दाँत तले वोह दबाये होंट?

मोहसन— माँगा जो मैंने बोसये-लब[3] बज़्मे-ग़ैरमें[4]।
त्यौरी चढ़ाई दाँतसे उसने दबाके होंट॥

सहर— अपनी जगहपै देख सकेंगे न गैरको।
जाया करेंगे और ही रस्तेसे सैरको।

धीरे-धीरे यही स्त्रियो सम्बन्धी शाइरी जनानी शाइरी बनती गई, बजाय इसके कि शाइरीमे स्त्रियोचित उच्च भावनाओंका समावेश करते, उनके वास्तविक पवित्र-प्रेमका उल्लेख करते। स्त्री जिसकी एक बार हो जाती है, वह चाहे जैसा भी गया-बीता हो, उसे उम्रभर निभाती है। अपाहिज, रोगी, निखट्टू, अनाचारी पतिको भी ईश्वर-तुल्य समझती है और उसीकी सेवा और यादमे समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत लखनवी शाइरोंने उसके कुत्सित रूपका वर्णन किया। उन्हे नारीके अन्दर माँ, बहन, पत्नी, प्रियतमाकी उज्ज्वल एव महान् आत्माओके दर्शन नही हुए। उन्होने वेश्याके उस घिनौने रूपको देखा, जिसे उसने शृगारिक वस्तुओसे छिपा रक्खा था। अतः लखनवी शाइरोके यहाँ—जुल्फ, काकुल, जूडा, चोटी, कघी, शीशा, सुर्मा, मिस्सी, गाजा (पाउडर), मेहदी, फूल, सिन्दूर, पान, इत्र—आदि शृगारिक वस्तुओके अशआर बहुत अधिक सख्यामे मिलते है। यहाँ नमूनेके तौरपर हर चीज़का सिर्फ एक-एक शेर दिया जा रहा है।

---

[1]महफिलमे, [2]कन्धेपर; [3]होटोका चुम्बन; [4]दूसरोके जल्सेमे।

साज-सज्जा

मोहसन— हफ़्ते भरमें उन्हें फ़ुरसत नहीं इन सातोंसे—
पान, इत्र, आइना, मँहदी, मिस्सी, सुर्मा, शाना[1]॥

सहर— हथेली सफ़ाईसे आईना है।
मलो मिस्सी देखो धरी हाथमें॥

अली— कहकशाँ[2] दिखलाती है जलवा शबे-तारीकमें[3]।
ख़त नहीं सेंदूरका ऐ जानेजाँ! बाला-ए-सर॥

बहर— ग़ाज़ेसे[4] लालाज़ारे-शफ़क़को[5] ख़िजल[6] किया।
अफ़्शाँ[7] चुनी तो चाँदनीका खेत कट गया॥

जेवरात

उन दिनोके प्रचलित सभी ज़ेवरातपर लखनवी शाइरोने तबा आज-माई[8] की है। उन ज़ेवरातोंकी सूची और अशआरको देखकर यह मालूम होता है कि हम शेर नही पढ रहे है, सर्राफा-बाज़ारमे बैठे हुए है। बतौर नमूना चन्द अशआर मुलाहिज़ा हों—

नासिख़— चम्पाके फूलमें है न गुलकी कलीमें है।
जैसी तेरे गलेकी है, चम्पाकलीमें बू॥

करते है आलमको जिसके पाँवके बिछवे शहीद।
उस सितमगरकी बला लेती है ख़ंजर हाथमें॥

अजी यह अर्शे-मुअ़ल्लाके[9] गोशबारेका[10]।
गुहर[11] कहाँसे तुम्हारे बुलाक़में आया?

---

[1]कघा; [2]बिजली; [3]अधेरी रातमे; [4]पाउडरसे; [5]सन्ध्याकालीन लालिमाको; [6]शर्मिन्दा; [7]गोटे वगैरहके कटे हुए बारीक टुकडे जो दुलहनोंके मुँहपर चुनते है; [8]कोशिश; [9]आकाशमे रहनेवालोके; [10]कानका; [11]मोती।

बहर— पहने जो मोतियोंके करनफूल यारने।
तारोंपै ओस पड़ गई, ख़ोशा[1] ठिठुर गया॥

लख़ते-जिगरसे मेरे क़ीमतमें बढ़ चले थे।
झूठे पड़े नगीने सब उसके नौरतनमें॥

लिबास

रग-बिरगे दुपट्टे, ओढने, पायजामे, नेफ़े, कुरती, अँगिया, आदिके चन्द नमूने—

सहर— मिसले-कमर लचकती हैं दोनों कलाइयाँ।
भारी हैं पांयचे दमे-रफ़्तार[2] हाथमें॥

इश्क़ी— ग़जब नैरंगे-अक्स[3] आरिज़े-रंगीनें[4] दिखलाया।
सुनहरा था दुपट्टा, हो गया गुलनार काँधेपर॥

बहर— महरमके[5] सितारे टूटते हैं।
पिस्ताँके[6] अनार छूटते हैं॥

नासर— सुर्ख़ पाजामा है, गोटा हर कलीमें है लगा।
फूलकी छड़ियाँ हैं उस रश्के-चमनकी[7] पिण्डलियाँ॥

जरी— मूबाफ़े-ज़र[8] लपेट दिया मुँहके अक्सने।
गरदनपै आके बन गई गोटेका हार जुल्फ़॥

रूप

हबीबके जिस्मके हर हिस्से—सीना, छातियाँ, नाभि, पेट, कमर,

---

[1]अन्नकी बाली, गुच्छा; [2]चलते समय; [3]परछाईंकी रगीनता; [4]रंगीन कपोलोंने; [5]चोलीके; [6]कुचोंके; [7]बगीचेके लिए भी ईर्ष्यायोग्य; [8]वह फ़ीता जो औरते चोटीमे लपेटती है।

नितम्ब, रान, पिंडलीका उल्लेख लखनवी शाइरोंने बहुत ही अश्लील और कुरुचिपूर्ण ढगसे किया है। इनमे सिर्फ नौजवान शाइर ही नही, बल्कि उस्ताद और बुजुर्ग शाइर भी है। सभ्यता इजाज़त नही देती कि उदाहरणस्वरूप इस तरहका एक शेर भी पेश किया जाय। इन अशआरको पढकर ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई जगली औरत ज़ेवर आदिसे सजकर बाजारमे नगी खडी हो।

उक्त ज़नानी शाइरीके अतिरिक्त लखनऊमे ख़ारिजी शाइरीको बहुत फरोग मिला। इसके बानी-मुब्बानी 'नासिख़' हुए है। हृदयगत भावोकी

दाख़िली-ख़ारिजी शाइरी

शाइरीको दाख़िली शाइरी कहते है। दाख़िली शाइरी अकृत्रिम और स्वाभाविक होती है। इसे सुनकर हृदय-तन्त्रीके तार झकृत हो उठते हैं और उनसे 'आह' की ध्वनि निकलती है। दाख़िली शाइरी देहलवी स्कूलकी देन है, इसलिए इसे देहलवी शाइरी भी कहते है। इसके नमूने यहाँ देनेकी आवश्यकता नही। मीर, दर्द ग़ालिब, मोमिन आदि सैकड़ों देहलवी शाइरोके कलाममे ऐसे नमूने देखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त दूसरे भागके कई लखनवी शाइरोके यहाँ इस तरहका कलाम काफ़ी मिलेगा। क्योकि वर्त्तमान युगमे ख़ारिजी रगमे शाइरी करना प्रायः बन्द हो गया है, और वर्त्तमानमे प्राय. सभी लखनवी शाइर दाख़िली रंगमें कहते है।[1]

ख़ारिजी शाइरी मस्तिष्ककी शाइरी है, दिमागसे सोच-सोचकर अस्वाभाविक और कृत्रिम कल्पनाओको शब्दाडम्बरों-द्वारा सजाकर

---

[1]प्राचीन देहलवी शाइरोका कलाम शेरो-सुख़न प्रथम भागमे ३००-४०० पृष्ठोंमे बहुत अधिक सख्यामे दिया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरा भाग केवल देहलवी स्कूलके शाइरोका है, जिसमे हज़ारो शेर दाख़िली रंगके है।

पेश करना ख़ारिजी शाइरी है। इसे सुनकर दिल तो वज्दमे (तन्मयतामे) नही आता, हाँ, इसकी जाहिरा शानो-शौकत, टीप-टाप, नफ़ासत और लिबासको देखकर मस्तिष्क अवश्य झूम उठता है। ख़ारिजी शाइरी लखनऊ स्कूलकी उपज है। इसलिए इसे लखनवी शाइरी भी कहते है।

दाखिली रंग, शाइरीका आत्मा है तो ख़ारिजी रंग उसका कलेवर। हकीकतमे शाइरीके लिए दोनों ही जरूरी है। आत्मा कितना ही पवित्र और उन्नत हो, सडे-गले कलेवरमे घिनावना ही मालूम देगा। इसी तरह बगैर प्राणका कलेवर कितना ही सजाया जाय दुर्गन्धित हो उठेगा।[1]

ख़ारिजी रंगके चन्द नमूने

नासिख़—

रूठे हुए थे आप कई दिनसे, मनगये।
बिगड़े हुए तमाम मेरे काम बन गये॥

हँसते हो सुनके मेरा हाल कहाँतक देखूँ?
बे रुलाये यह कहीं, मर्सियाख़्वाँ[2] उठता है?

मुझको बेगाना[3] समझे है, ज़ालिम!
राह चलतेको आश्ना[4] जाने!!

अव्वल तो न कासिदको[5] रहे-कूए-सनम[6] याद।
पहुँचे तो फरामोश[7] हो पैगाम[8] हमारा॥

तमाम उम्र यूँ ही हो गई बसर अपनी।
शबे-फिराक[9] गई, रोजे-इन्तजार[10] आया॥

---

[1]ख़ारिजी-दाखिली शाइरीका उल्लेख यहाँ हम जानबूझकर सक्षिप्तमे कर रहे है, क्योंकि प्रथम भागमे पृ० २४८-२७२मे विस्तारसे दे चुके है। [2]मर्सिया कहनेवाला; [3]गैर, पराया; [4]मित्र, परिचित; [5]पत्र-वाहकको; [6]प्रेयसीके स्थानका मार्ग; [7]भुलाया जाये; [8]सदेश, [9]विरह रात्रि; [10]प्रतीक्षा-दिवस।

भूलकर ओ चाँदके टुकड़े ! इधर आ जा कभी।
मेरे वीरानेमें भी हो जाये दमभर चाँदनी ॥

न सज्द-ए-दरेजानाँसे[1] सर उठाऊँगा।
यह वोह नमाज़ है जिसका कभी सलाम नहीं ॥

हश्रतक जीमें है, वेहोश रहूँ मै साकी !
काश मै[2] भरदे मेरे उम्रके पैमानेमे[3] ॥

'नासिख़' ! शराब पी, शबे-तारीक[4] हो तो हो।
रोशन है, सहने-बाग़में हरसू[5] चराग़े-गुल[6] ॥

हर तरफ़ मसरूफ़[7] ज़ाहिद[8] है, नमाज़े-सुवहमे।
गरदने-मीनाको भी लाज़िम है अब खम कीजिए ॥

एक हफ़्तेसे बहम सातो मयस्सर है मुझे।
दश्त, वरिया, सब्ज़ा, साकी, शीशा, सागर, चाँदनी ॥

आती-जाती है जा-बजा बदली।
साक़िया जल्द आ, हवा बदली ॥

ख़लील——

सुन लीजिए ज़रा मेरे अश्कोंका[9] माजरा[10]।
इन मोतियोको भी कभी कानोमे डालिए ॥

सबा——

उनकी रफ्तारसे दिलका अजब अहवाल हुआ।
रुँध गया, पिस गया, मिट्टी हुआ पामाल हुआ ॥

---

[1]प्रेयसीके द्वारपर झुका हुआ मस्तक; [2]शराब; [3]प्यालेमे; [4]अँधेरी-रात; [5]चारो तरफ; [6]फूल रूपी दीपक; [7]व्यस्त; [8]परहेज़गार; [9]आँसुओं-का; [10]हाल।

रिन्द—

बाक़ी है अभी असर जुनूंका[1]।
सौदा[2] तो गया है, झक[3] रही है॥
लैला मजनूंका रटती है नाम।
दीवानी हुई है, बक रही है॥

सबा—

बेतकल्लुफ उससे होकर क्यों न हों महजूज़[4] हम।
तोड़कर परहेज़ होता है बहुत बीमार खुश॥

अमीर मीनाई—

सैयाद! मैं तो तायरे-रफ़अ़तपसन्द[5] हूँ।
लटका मेरे क़फ़सको तू शाखे-हिलालसे[6]॥
ग़ैरोंको फाड़ खाय सगे-यार[7] तो कहूँ।
"ऐ शेर, वाह, तू ही तो शेरो-का-शेर है॥"

रंगीन—

पहुँचे हम जिस शहरमे पूछा यह अहले-शहरसे—
"खूबरुओंकी[8] यहाँ बिकती है, तसवीरें कहाँ?"
पढाई थी पट्टी उन्हें ग़ैरने।
मेरा खत वह क्यों नामाबर[9] देखते?
बर्छीका काम कर गई अर्ज़ी रक़ीबकी[10]।
तेरी नज़रसे मेरे जिगरसे गुजर गई॥

---

[1]उन्मादका; [2]पागलपन; [3]सनक, वहम; [4]खुश; [5]ऊँचा उड़नेवाला पक्षी; [6]दोजके चाँदसे; [7]प्रेयसीका कुत्ता; [8]सुन्दरियोकी; [9]पत्र-वाहक; [10]शत्रुकी।

करता हूँ याद शामसे अबरु-ए-यारको[१]।
खंजरसे काटता हूँ, शबे-इन्तजारको[२]॥

उठाते हो तो फिर सबको उठा दो।
यह चिलमन[३] किसलिए दरपर[४] पडी है?

दरपर पडे हुओंपै ग़ज़बका अताब[५] है।
परदे भी आज बाँधके लटकाये जाते हैं॥

उछाला गेसुओंने[६] नाम कैसा पाके आरिजको[७]।
ज़माने-हुस्नपर छाये हुए हो, आस्माँ होकर॥

तेरी पलकोंसे थीं वा-वस्ता उम्मीदें दिलकी।
आँख क्या तेरी फिरी, फिर गई झाड़-दिलमें॥

ले उड़ी घूँघटके अन्दरसे निगाहे-मस्तहोश।
आज साकीने पिलाई है हमें छानी हुई॥

आँखमें डोरोंका आलम देखिए।
यह नया आहू[८] असीरे-दाम[९] है॥

नहीं कटती तो कहता है सितमगर—
"यह गरदन है कि फुरकतकी[१०] घडी है॥"

जलाल—

कहकहा मारे अदू[११] इसकी नहीं ताब,[१२] ऐ यार!
रोक लेते हम अगर तोपका गोला होता॥

देखे जो आईना भी शबाब[१३] उस जमीलका[१४]।
दिलमें चुभे उभार मुहासोंकी कीलका॥

---

[१]प्रेयसीकी भवोंको; [२]रात्रिकी प्रतीक्षाको; [३]पर्दा, चिक; [४]द्वारपर; [५]क्रोध; [६]बालोंकी लटोंने; [७]कपोलोंको; [८]हिरन; [९]जालमें फँसा हुआ; [१०]विरहकी; [११]शत्रु; [१२]बरदाश्त, [१३]यौवन; [१४]सुन्दरीका।

ग़ैरसे सोना-बसीना हुए, तुम।
छातीपर सॉप यहाँ लोट गया॥

सब उसके गेसुओंकी शिकनमे[1] असीर है[2]।
हम मॉगकी लकीरके ऐ दिल फ़क़ीर है॥

ऐसे खूँख्वार है उस तुर्कके[3] मुए मिज़गाँ[4]।
कि तसव्वुरसे[5] यहाँ रोएँ खडे होते है॥

यारका बोसये-लबे-शीरी[6]।
अब तो बाजारकी मिठाई है॥

समझे यह हम जो रातको तारे चमक गये।
बक्ते-सियहपर[7] अपने फलक[8] खन्दाजन[9] हुआ॥

दिलको लगाके कूचये-गेसूमे[10] ले चला।
आहू-ए-चश्मेयार[11] तिलस्मी हिरन हुआ॥

पीरीसे[12] आरज़ूए[13]-जवानी जो हमने की।
ऐसा दिया जवाब कि दन्दाँशिकन[14] हुआ॥

नासिख़—

मिल गया ख़ाकमें पिस-पिसके हसीनोंपर मैं।
क़ब्रपर बोयें कोई चीज़ हिना[15] पैदा हो॥

---

[1]बल, सिकुड़न; [2]कैदी; [3]माशूकके; [4]पलकोके बाल; [5]ख़याल आते ही; [6]मधुर ओठोका चुम्बन; [7]दुर्भाग्यपर; [8]आसमान; [9]मुसकराया; [10]बालोके कूचेमे; [11]प्रेयसीके हिरन रूपी नेत्र; [12]वृद्धावस्थासे; [13]इच्छा; [14]दाँत टूट गया; [15]मेहदी।

मुनीर—

नाकये-लैलाकी[1] क्या सहराये-मजनूँमें[2] बिसात।
अज़दहे-वशहतके[3] मुँहमें ऊँट ज़ीरा हो गया॥

शादी है दुख़्ते-रिज़से[4] किसी दीं-परस्तकी[5]।
तौबाके[6] दरपै बजती है घण्टी शिकस्तकी[7]॥

शरफ़—

रमाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी।
इसी लकीरका मुझको फ़क़ीर होना था॥

अमानत—

आँसू रवाँ[8] है जुल्फ़े-सियहके ख़यालमें।
मोती पिरो रहा हूँ तेरे बाल-बालमें॥

क़लक़—

ऐसे दीवाने हों सर सगसे[9] फोड़ें अपना।
कभी बादाम जो देखें तेरी प्यारी आँखें॥

अमीर मीनाई—

वे करते हैं बातें अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर॥

हज़ारों ख़ार[10] लाखों फूल उस गुलशनमें हैं लेकिन—
न तुम-सा नाज़नी[11] कोई न हम-सा नातवाँ[12] कोई॥

---

[1]लैलाकी ऊँटनीकी; [2]मजनूँके जंगलमें; [3]उन्मादरूपी अजगरके; [4]मदिरासे, अंगूरकी बेटीसे; [5]धर्मात्माकी; [6]न पीनेकी प्रतिज्ञा; [7]हारकी; [8]बहते हुए; [9]पत्थरसे; [10]काँटे; [11]कोमल; [12]कमज़ोर।

उक्त अशआरमे शब्दोके रख-रखाव और मुनासिबतके अतिरिक्त कोई ऐसे हृदयस्पर्शी भाव नही है, जिन्हें पढ़-सुनकर कुछ क्षणके लिए मनुष्य अपनेको भूल जाय। इन्हें पढ़ते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक शब्दके मुकाबिलेमे दूसरा शब्द रखने और शाइराना करतब दिखानेके लिए ही इस वाग्जालकी रचना हुई है। रूठे हुएके लिए मन गये, बिगड़े हुएके लिए बन गये, इसी तरह सफेद टाइपमे दिये गये अन्य शब्दोंको एक दूसरेके मुक़ाबलेमे इस तरह बिठाया है, जैसे कठपुतलीके खेलमे पहलवान सजे बैठे हों।

रगीन, अश्लील और खारिजी शाइरीके अतिरिक्त लखनवी शाइरोंने अतिशयोक्तिपूर्ण अस्वाभाविक कलाम बहुत कहा, और ये सब रंग लखनऊ तक ही सीमित न रहकर समस्त उर्दू-ससारमे फैल गये। मुसहफ़ी-जैसा संजीदा देहलवी शाइर लखनऊ पहुँचनेपर इस तरहके रंगीन-अश्लील शेर कहनेपर मजबूर हो गया—

आया लिये हुए जो वोह कल हाथमें छड़ी।
आते ही जड़ दी पहली मुलाक़ातमें छड़ी॥

पानी भरे हैं यारो वाँ करमजी[1] दुशाला।
लुंगीकी सज दिखाकर सक़्क़ीनें[2] मार डाला॥

देहलवी शाइर सौदा, नसीर, ज़ौक तो खारिजी रंगमे कहते ही थे। मोमिन-ओ-ग़ालिब-जैसे देहलवी शाइर भी शुरू-शुरूमे खारिजी रगसे प्रभावित हो गये थे। वह तो खैर गुज़री जो जल्दी सँभल गये, वरना आज ग़ज़लका न जाने क्या रूप हुआ होता?

कहनेको दाग देहलवी शाइर थे, मगर उनका कलाम पूर्णरूपेण लखनवी रंगीन शाइरीमे सराबोर है। वे गालिब-ओ-मोमिनकी शाइरीके बजाय इंशा-ओ-जुरअतके अधिक नज़दीक हैं। यह बात दूसरी है कि देहलवी ज़बान, मुहावरे एवं अपने मखसूस (विशेष) अन्दाज़े-बयान, और

---

[1]एक प्रकारका रग; [2]भिश्तीकी पत्नीने।

तर्ज़ेअदाकी बदौलत सर्वत्र छा गये और उनका अनुकरण करनेको तत्कालीन लखनवी उस्ताद भी मजबूर हो गये।

इसतरहकी रंगीन खारिजी और अश्लील शाइरीने लखनऊको बहुत बदनाम किया। उर्दू शाइरीके सौभाग्यसे १८५७ के विप्लवमे लखनऊकी नवाबी भी चौपट हो गई। जो लखनवी शाइर कौसरो-तसनीमके धारेमे बहे जा रहे थे, वे विप्लव रूपी मौजोंके तमाचे खाकर हाथ-पाँव मारनेको मजबूर हो गये। किनारेपर आकर उन्होने देखा कि वे सचमुच मजनूँ मालूम होते हैं, उनका गरेबान वाकई तार-तार हो गया है और जल्द न सँभले तो उनका नातवाँ जिस्म दुनियाके थपेडे खाकर बरकरार नही रह सकेगा।

सौभाग्यसे उन दिनों रामपुरके नवाब भी बहुत बड़े अदब-नवाज़, और सुखन-फहम थे। शनैः-शनैः मुसीबतके मारे देहलवी-लखनवी शाइर वहाँ एकत्र हो गये। दिन-रातकी अदबी-सुहबतो और मुशाइरोमे एक साथ सम्मिलित होनेसे परस्पर विचारोके आदान-प्रदानसे सबने यह महसूस किया कि अब जुरअत-ओ-इंशाकी रंगीन, नासिख़की खारिजी और अतिशयोक्तिपूर्ण शाइरीका ज़माना लद गया। अब तो दाखिली एवं स्वाभाविक शाइरीका ही युग है। जो युगके विपरीत चलेगा खता खायेगा। चुनाचे देहलवी-लखनवी स्कूलोंकी दीवारे ढाकर एक ऐसा विश्वविद्यालय बना दिया गया, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तके स्नातक एक ही प्रकारका कोर्स पढ़ सके।

लखनऊकी पुरानी और नई शाइरी

लखनऊके पुराने उस्ताद शेरके बाह्य सौन्दर्यपर जान देते थे, वर्त्तमान शाइर शेरके अंतरगमे प्राण फूँकता है और उसका बाह्य रूप भी सुरुचिपूर्ण रखता है। पुराने शाइरोमे ज़ाहिरा शानो-शौकत, रोब-दाबका बहुत खयाल रखा जाता था। नया शाइर अपने समूचे व्यक्तित्वको इस तरह बनाता है कि उसका हर संकेत बा-असर होता है।

पहले-पहल गज़लके प्रति विद्रोही झंडे 'हाली' और 'आजाद' ने खड़े किये। हाली, 'गालिब' के और आजाद, 'जौक' के शिष्य थे। दोनोंके ही उस्ताद गजलके माने हुए उस्ताद हुए हैं। होना तो यह चाहिए था कि 'हाली' और 'आजाद' गजलको अत्यधिक मोहक और व्यापक बनाकर अपने उस्तादोंके योग्य उत्तराधिकारी शिष्य प्रमाणित होते, किन्तु यह उनकी योग्यता और सामर्थ्यके बाहर था। जिस बज्मे-गुलशनमें[1] मीर, आतिश, गालिब, मोमिन, जौक-जैसे तूतिये-अदब[2] नग़मासरा[3] थे, उस बज्ममें नग्मा छेड़नेके लिए कलेजा कहाँसे लाते? अतः उस वक्त जो इनके समकालीन, फ़हाशी (अश्लील) और बेवक़्तकी रागिनी अलाप रहे थे, जिससे भले आदमियोंकी नींदें उचाट थीं। हाली-ओ-आज़ादको उनका यह हू-हक पसन्द न आया और तत्कालीन गजलगोईसे खीझकर उन्होंने बहुत जोर-शोरके साथ गजलका विरोध किया। स्वयं गजलें लिखनी कतई बन्द कर दीं और लेखों-व्याख्यानों-द्वारा नज्म लिखनेका प्रचार ही नहीं किया, स्वयं भी काफी नज्में लिखीं।

गज़लकी मुख़ालफ़त

१८५७ ई० के विप्लवके पश्चात् मुसलमानोंकी जो दयनीय स्थिति हुई, उसने भी इस प्रचारमें सहायता दी। बादशाहत समाप्त हो गई। नवाब और रईस बरबाद हो गये। हजारों घर उजड़ गये, अनगिनत प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा विद्वान् सरेबाजार फाँसी चढ़ा दिये गये, दिल्लीकी फतहपुरी मस्जिदमें घोड़े बाँध दिये गये और मुसलमान कुचल दिये गये।

कुचले हुए साँपकी जो प्रतिहिंसाकी भावना होती है, वही मुसलमानोंकी होनी चाहिए थी, जैसीकी हिन्दुओंकी हुई। यानी उनको मुसलमान विजेताओंने विजित किया तो, उन्हें कभी चैनसे नहीं रहने दिया। बराबर

---

[1]उद्यानरूपी साहित्य गोष्ठीमें; [2]साहित्यिक उद्यानके गानेवाले पक्षी; [3]संगीतमग्न।

संघर्ष करते रहे और अंग्रेजोंने कुचला तो उनके नाकमे दम बराबर रखा और आख़िर स्वाधीन होकर रहे। लेकिन मुसलमानोकी यह प्रतिहिंसा देशके दुर्भाग्यसे जी हुज़ूरीमे परिणित हो गई। क्योकि उन दिनो मुसलमानोके प्रभावशाली नेता सर सैयद अहमद अंग्रेजी हुकूमतके बहुत बडे हिमायती और हितैषी थे। वे अलीगढ युनिवर्सिटीके जन्मदाता और प्राण थे। उन्होने मुसलमानोमे यह भावना भर दी कि "अंग्रेज सरकारके भक्त रहकर जितने भी अधिकार ले सको लेते रहो, अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करके उच्च-से-उच्च ओहदे प्राप्त करो, और इस तरह अपना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पडोसी जातियोसे बुलन्द करो।" हाली और आज़ादने उनका हर तरहसे समर्थन किया और साथ भी दिया।

परिणाम इसका यह हुआ कि उर्दूका युवकवर्ग शनै:-शनै: नज्मकी ओर आकर्षित होने लगा। यहाँतक कि बहुत-से गजल-गो शाइर भी गजलको तिलाँजलि देकर नज्मके क्षेत्रमे उतर गये, और नई पीढीने तो गजलकी तरफ नजर भरकर देखना भी उचित नही समझा।

इस विरोध और बहिष्कारसे गज़लको प्रकट रूपमे तो बहुत बडा धक्का पहुँचा, किन्तु अतरगमे इससे लाभ ही हुआ। क्योकि उस जीर्ण-शीर्ण गजलका कायाकल्प न हुआ होता तो वह आज इस तरह आबो-तावके साथ चमकती हुई दिखाई न देती। नये-नये अकुरोके विकासके लिए मुर्झाये हुए फ़ल-पत्तोको नष्ट करना और जमीनको गोडते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

ग़ज़लमें स्वाभाविकता और विकार

जब दक्षिणमे उर्दू-शाइरीका प्रारम्भ हुआ तो शुरू-शुरूमे प्रेमपूर्ण भावनाओको सीधे-सादे शब्दोमे व्यक्त किया जाता था। मुसलमान शाइरोने ईरानी गज़लके ढगपर शाइरी शुरू की। लेकिन उनके सामने भारतीय कविताका मोहक रूप था। अत उन्होने भी सजन, पिया, पपीहा आदि भारतीय पात्रो और भारतीय उपमाओ, उदाहरणोका प्रयोग किया।

चूंकि दक्षिणी मुसलमान शाइर भी प्रायः ईरान और फारससे आये थे और शाइरी भी दक्षिणमे सीमित न रहकर दिल्लीतक व्यापक हो गई थी, तत्कालीन शाइर प्रायः फारसीके विद्वान् थे, अत. बहुत शीघ्र गजलमे फारसीका अनुकरण होने लगा।

नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म और मन्दगतिसे होता है। उद्गम स्थान-मे वह तेजी और भयावह स्थिति नही होती, जो उत्तरोत्तर आगे बढनेपर होती है। शाइरीका प्रारम्भ भी जब हुआ होगा तो स्वाभाविक और सरल ही हुआ होगा। मनकी भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोमे अकृत्रिम ढगसे व्यक्त किया गया होगा। शनैः-शनैः उपमाओ-उदाहरणोका प्रादुर्भाव हुआ होगा।

जिस हबीब (प्रियतम या प्रियतमा) को देखकर उसकी ओर मन आकर्षित हुआ होगा, उसे मनमोहन कहा गया होगा। फिर वही मन जब उसके लिए उचाट-सा या खिचा-खिचा-सा रहने लगा होगा, तब उस हबीबको चित-चोर भी कहा गया होगा, और कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये गये होगे—

वही मै हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको?

—असर देहलवी

गम है या इन्तज़ार है, क्या है?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है?

—सोज़

हम तेरे इश्कसे तो वाक़िफ़ नहीं, मगर हाँ।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥

—मीर

आगे चलकर यह दिल मलनेवाला हबीब, चित-चोर कहलाने लगा—

दिल ले गया है मेरा, वोह सीमतन[1] चुराकर।
शरमाके जो चले है, सारा बदन चुराकर॥
—मुसहफ़ी

दिलकी हालत

इसी दिलको रफ्ता-रफ्ता मनचले शाइरोंने ऐसी चीज तसव्वुर कर लिया, जो बा-आसानी जिस्ममे जुदा किया जा सकता है। उसके चाहे जितने टुकड़े किये जा सकते हैं। वे टुकडे फिर जोडे भी जा सकते हैं। दिल नक़्द या उधार बेचा भी जा सकता है। चोरी भी किया जा सकता है, पाँवके तले कुचला भी जा सकता है।

अख्तर— सौ टुकड़े हो गया न सुनी हमने पर सदा[2]।
क्योंकर न जीको भाये, अदाये-शिकस्ते-दिल[3]?

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको।
यह सहर[4] है, एजाज़[5] है या शीशागरी[6] है॥

नासिख़—जो दिलको देते हो 'नासिख़'! तो कुछ समझकर दो।
कहीं ये मुफ़्तमें देखो न माल तलपट हो॥

आतश— किसीने मोल न पूछा दिले-शिकस्ताका[7]।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता?

---

[1]गोरा, चिट्टा; [2]आवाज; [3]हृदय टूटनेका हाव-भाव; [4]जादू; [5]सम्मोहन शक्ति; [6]शीशेको जोडनेकी कला; [7]टूटे दिलका।

बहर— मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका ?
मैं हूँ या आप हैं, घरमें कोई आया न गया ॥

रिन्द— फेंक दूँ दिलको अभी, चीरके पहलू अपना।
तुझपै क़ाबू नहीं, दिलपर तो है क़ाबू अपना !

जौक़— हाथ आये किस तरहसे दिले-गुमशुदाका खोज ?
है चोर वोह कि जिसपै किसीका भरम नहीं ॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोंका गया उनपै भरम और जियादा ॥

अमानत— गुमाँ न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका ?
झुकाके आँख, सबब क्या है मुसकरानेका ?

तसलीम— तड़पते देखता हूँ जब कोई शय।
उठा लेता हूँ, अपना दिल समझकर ॥

अमीर मीनाई—
बराबर आईनेके भी न समझे क़द्र वोह दिलकी।
इसे ज़ेरे-कदम[1] रक्खा, उसे पेशे-नजर[2] रक्खा ॥

निज़ाम रामपुरी—
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है, बता कुछ तो 'निज़ाम' !
मुझसे दिल माँगे तो इंकार करूँ या न करूँ ?

दाग़— मैंने जो माँगा कभी दूरसे दिल डर-डरकर।
उसने धमकाके कहा—"पास तो आ देते हैं ॥—"

मोमिन— बात करनेमें रकीबोसे[3], अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बदअहदका[4] पैमाँ[5] होगा ॥

---

[1]पाँवके नीचे; [2]आँखके सामने; [3]शत्रुओसे; [4]झूठे वादा करनेवाला; [5]वादा-भरोसा।

दर्द— किसीसे क्या बयाँ[1] कीजे उस अपने हाले-अबतरका[2]।
दिल उसके हाथ दे बैठे, जिसे जाना न पहचाना॥

असर देहलवी—कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है।
औरके हाथमें मेरा दिल है॥

नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री?
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती॥

यक़ीन— दिल छोड़गया हमको, दिलबरसे तवक्क़ोह[3] क्या?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको[4] क्या कहिए?

बेदार— देता नहीं दिल लेके वोह मग़रूर[5] किसीका।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका॥

ज़िया— मैंने कल पूछा 'ज़िया' से दिल किधरको खो दिया।
उसने कूचेको तेरे बतलाके टपसे रो दिया॥

अहसन— दिलको खोय है कल जहाँ जाकर।
जीमें है आज जी भी खो आऊँ॥

बयान— साफ मुँहपर मै नहीं कहता कि होगा उसके पास।
वर्ना क्या वाक़िफ नहीं मैं दिल है मेरा किसके पास॥

मुसहफ़ी—'मुसहफ़ी' हम तो यह समझे थे कि होगा कोई ज़ख्म!
तेरे दिलमें तो वहुत काम रफ़ूका निकला॥

चितवन

हबीबकी नजरोंमें दिलको बेकरार-ओ-बेचैन करनेकी शक्ति होनेके

---

[1]बयान, [2]शोचनीय अवस्थाका; [3]आशा, [4]ग़ैरको, परायेको, [5]घमण्डी।

कारण, उसकी भवोंको धनुष, पलकोंके बालोंको तीर और तिर्छी-चितवनको कटारसे उपमा दी गई। चित्तको आकर्षित करने या दिलको घायल करनेवाली इस अदाके सम्बन्धमे गालिब किस सादगीसे फर्माते है—

इस सादगीपै कौन न मर जाये ए ख़ुदा!
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं!

जौक किस भोलेपनसे दरियाफ्त करते है—

तुफ़ंगो-तीर[1] तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिलके।
इलाही, फिर जो दिलपै ताकके मारा तो क्या मारा?

और इस वारका क्या हश्र हुआ, यह भी जौककी जबानी सुनिए—

निगहका वार था दिलपर, तड़पने जान लगी।
चली थी बर्छी किसीपर, किसीके आन लगी!

इसी भावको 'दर्द' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते है—

अन्दाज़ वोही समझे मेरे दिलकी आहका।
ज़ख्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

और वजीरका अन्दाजे-बयान मुलाहिजा हो—

तिर्छी नजरोंसे न देखो आशिके-दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज़ हो? सीधा तो कर लो तीरको॥

अदा (हाव-भाव)

इन्ही आकर्षित करनेवाली अथवा दिलको घायल करनेवाली अदाओंको लेकर शाइरोने राईका पर्वत बना डाला। उसे कातिल, जल्लाद और क़स्साबसे भी घिनौना रूप दे डाला।

---

[1]तमचा।

ज़ौक़—
जिबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर[१]।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे एहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥

मोमिन—
ख़बर नहीं है कि उसे क्या हुआ? पर इस दरपर[२]।
निशाने-पा[३] नज़र आता है नामाबरका-सा[४]॥

तू किसीका भी ख़रीदार नही पर, ज़ालिम!
सर-फ़रोशोंका[५] तेरे कूचेमें बाज़ार लगा॥

जवाबे-ख़ूने-नाहक़[६] मेरा ऐसा क्या दिया तूने?
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब[७] अपना-सा॥

दाग़—
सर काटकर लगाते हैं, गरदनके साथ फिर।
कुछ रह गई है उनको हविस[८] इम्तहानकी॥

महफिले-यार कस्सावकी दुकान मालूम होती है—

करीनेसे[९] अजब आरास्ता[१०] क़ातिलकी महफ़िल है।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है॥

तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फ़ाक़[११]! क्या कहना!!
इधर कुश्तेपै[१२] कुश्ता है, उधर बिस्मिलपै बिस्मिल है[१३]॥

रूप

प्रियतमाके रूपका बखान भी प्रारम्भमे स्वाभाविक हुआ होगा। फिर उसे गुलबदनी, हंसगामिनी, मृगनयनी, चन्द्रमुखी आदि भी कहा जाने लगा होगा।

---

[१]उपाय; [२]दर्वाज़ेपर; [३]पाँवका निशान, [४]पत्रवाहकका, [५]सर बेचनेवालोका; [६]व्यर्थ वध करनेका जवाब, [७]इष्ट-मित्र; [८]तृष्णा; [९]व्यवस्थित ढगसे; [१०]सजी हुई; [११]निर्दयी, बेरहम; [१२]आशिकोकी लाशोके ढेर; [१३]तडपते हुए।

ये जमालयाती शेर देखिए किस स्वाभाविक ढंगसे बयान किये गये हैं—

मीर— नाज़ुकी उसके लबकी[1] क्या कहिए?
पंखड़ी इक गुलाबकी-सी है॥

माथेकी बिन्दीका तसव्वुर देखिए—

दर्द— फैला है कुफ्र याँ तक, काफ़िर तेरे सबबसे।
शमए-हरम[2] भी दे है, माथेपै अपने टीका॥

[अहले इस्लाममें बिन्दी या तिलक लगाना वर्जित है। फिर भी देखिए, उस प्रियतमाकी बिन्दीका इतना व्यापक अनुकरण हुआ है कि मसजिदमें जलते हुए चरागसे जो लौ ऊपरको उठ रही है, उसे लौ न समझो, वह तो शमए-हरम अपने माथेपै बिन्दी लगा रही है।]

दर्द— बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द'!
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे॥

ताबाँ— जब पान खाके ज़ालिम गुलशनमें जा हँसा है।
बे अख्तियार कलियाँ, तब खिलखिलाइयाँ हैं॥

ज़ौक— गुंचे तेरी गुंचादहनीको[3] नहीं पाते।
हँसते तो हैं, पर तेरी हँसीको नहीं पाते॥

क़ायम— क्यों न रोऊँ मैं, देख खन्दये-गुल[4]?
कि हँसे था वोह बेवफ़ा भी यूंही॥

जलाल— रुखे-रोशनसे[5] किसने उलटी नक़ाब?
जल उठे दाग इक बुझे दिलके॥

---

[1]ओठोंकी; [2]मस्जिदका दीपक; [3]फूल जैसे मुँहको; [4]फूलोंकी मुसकानको; [5]प्रकाशमान चेहरेपरसे।

ममनून— तबस्सुमे-लबे-गुंचेको[1] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी खन्दये-निहानीका[2]॥

दर्द— जूँ चाहिए उस तरह बयाँ[3] हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे[4] ही तू वस्फ़[5] अपनी कमरका॥

कपोलके तिलकी कितनी अछूती कल्पना है।

अमीर मीनाई—किसीने लफ़्ज़े-रुख़ बेनुक़्ता कब आलममें देखा है?
न होता किस तरह नुक़्ता रुखे-महबूबपर[6] तिलका॥

[उर्दूमे रुख़के 'ख़' के ऊपर नुक्ता लगता है। अत माशूकके रुख़ (कपोल) पर तिल रूपी नुक्ता होना लाज़िमी था।]

प्रियतमाका शर्मीलापन देखिए—

असर देहलवी—पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब मुझे डरके इक नज़र देखा॥

मीर— देख लेता है वह पहले चारसू[7] अच्छी तरह।
चुपके-से फिर पूछता है, "मीर तू अच्छी तरह?"

प्रियतमाके इस जमालपर शाइरोने वह रंगामेज़ी की कि उनके हस्त-कौशलके नीचे वास्तविक रूप तो दब गया और एक ऐसा बुत उभर आया, जिसे किसी भी हालतमे प्रियतमा या हबीब तसव्वुर नही किया जा सकता।

दुनियाभरके हथियारोसे सुसज्जित, आँखोमे कातिलाना डोरे पड़े हुए, आस्तीन ख़ूनमे सनी हुई, कयामतबरपा चाल, आशिकोके दल-के-दल जिस प्रियतमाके साथ हों, उसे कौन समझदार प्रियतमा बनानेको प्रस्तुत होगा?

अज्ञात— चढाई है दिले-नामनाकपर लश्कर-के-लश्करकी।
छुरीकी, तीरकी, तलवारकी, दश्नेकी, ख़ंजरकी॥

---

[1]फूलोकी मुसकराहटको; [2]छुपी हुई मुसकानका; [3]कथन; [4]मुखारविन्दसे; [5]सौन्दर्य-वर्णन; [6]प्रियतमाके कपोलपर; [7]चारो तरफ।

अमीर मीनाई—

क़रीब है यार रोज़े-महशर[1] छुपेगा कुश्तोंका[2] ख़ून क्योंकर ?
जो चुप रहेगी ज़बाने-ख़ंजर, लहू पुकारेगा आस्तींका ॥

यह सौन्दर्य-वर्णन देखिए जो असम्भव कल्पनाओंके कारण उपहासास्पद बन गया है—

असीर— क्या नज़ाकत है, जो तोड़ा शाख़े-गुलसे कोई फूल।
आतिशे-गुलसे[3] पड़े छाले तुम्हारे हाथमें ॥

इंशा— नज़ाकत उस गुले-रानाकी[4] देखिए 'इंशा'।
नसीमे-सुबह[5] जो छू जाये, रंग हो मैला ॥

अज्ञात— सनम, सुनते हैं, तेरे भी कमर है !
कहाँ है ? किस तरफ़को है ? किधर है ?

अफ़ज़ल हरचन्द जुस्तजूमें[6] रहे साहबे-निगाह[7]।
देखा जो दूरबीसे न आई नज़र कमर ॥

[भला जिस प्रियतमाकी कमर ही दिखाई न दे, वह भुतनीके सिवा और क्या होगी ?]

मुनीर शिकोहाबादी—

कुछ जवानी है अभी, कुछ है लड़कपन उनका,
दो दगाबाज़ोंके क़ब्ज़ेमें है जोबन उनका ॥

ग़ालिब— शबको[8] किसीके ख़्वाबमें[9] आया न हो कहीं !
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुकबदनके[10] पाँव ! !

---

[1] प्रलयका दिन; [2] आशिकोंके कत्लका; [3] फूलोंकी गरमीसे; [4] फूलन्दे सुकुमारीकी, [5] प्रातःकालीन मृदु पवन; [6] तलाशमें, [7] नेत्रवाले; [8] रात्रिको; [9] स्वप्नमें, [10] कोमलांगीके।

दाग़— वोह दबे पाँव चले हश्रके[1] डरसे, तौबा!
फ़िक्र है, चाल उड़ाले न क़यामत मेरी॥

अपनी तसवीरपै नाज़ाँ[2] हो तुम्हारा क्या है,
आँख नरगिसकी, दहन[3] गुंचेका,[4] हैरत मेरी॥

मोहसिन—नाज़ुकी कहते है इसको पाँव ज़ख़्मी हो गये।
आ गई चलनेमे जब तसवीरें-नश्तर ज़ेरे-पा॥

अज्ञात— सीखे हो किससे, सच कहो प्यारे, यह चाल-ढाल?
तुम इक तरफ चलो हो तो तलवार इक तरफ़?

दाग़— लड़े मरते है आपसमें तुम्हारे चाहनेवाले।
यह महफ़िल है तुम्हारी या कोई मुर्ग़ोंकी पाली है?

प्रेम-रोग

तीरे-नजरके घायलको 'आशिक' और उसके ला-इलाज मर्ज़को 'इश्क' कहा जाता है। 'मीर' ने जिन्दगी भरके तजुर्बेको इस एक मिसरेमे उडेल दिया है—

मरज़े-इश्क़का इलाज नहीं

जब यह घाव, दिल पहले-पहल खाता है तो बकौल 'शेफ्ता' कुछ इस तरह महसूस होता है—

इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो यह 'आग-सी' सीनेके अन्दर अपने आप लगाये? टी० बी० के कीटाणु भी क्या कोई सिरफिरा अपने सीनेमे अपने आप छोडता है? वे तो न जाने कैसे और कब आवारा मेहमानकी तरह तशरीफ़ ले आते हैं। यही हाल जख़्म खाते वक्त दिलका होता है—

---

[1]प्रलयके; [2]अभिमानी; [3]मुख, [4]कलीका।

हाली— इश्क सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद।
खुद-ब-खुद दिलमें है इक शख्स समाया जाता॥

और जब यह रोग खुद-ब-खुद दिलमे समाकर अपना असर जाहिर करता है तो रोगी (आशिक) छटपटाता है और अपने स्वस्थ दिनोंकी याद करता है—

जलील मानिकपुरी— दर्दसे वाकिफ़ न थे, ग़मसे शनासाई[1] न थी।
हाय क्या दिन थे, तबीयत जब कहीं आई न थी॥

यह सीनेके अन्दर लगी हुई आतशे-इश्क रुईकी आगकी तरह जिस्मको फूंकती रहती है और अन्तमे हैरतसे लोग पूछते है—

घुल गया आपी आप कुछ 'कायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

और जब लोगोको वास्तविक स्थितिका ज्ञान होता है तो श्मशान घाटके वैराग्यपूर्ण स्वरमे लोग कह उठते है—

दर्द— क़हर[2] है, मौत है, क़ज़ा[3] है इश्क।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़॥

मरजे-इश्कमे तडपना, आहे भरना, रोना-बिलखना, तारे गिन-गिनकर राते काटना लाजिमी है। इन्ही मनो-व्यथाओका कुछ आभास इन प्रेम-रोगियोने देखिए किस बेतकल्लुफीसे दिया है—

आशिक़की मजबूरी

दर्द— अपने मिलनेसे मना मतकर।
इस बिन बेअख़्तियार है हम॥

---

[1]मेल-जोल, परिचय; [2]जुल्म; [3]मृत्यु।

आशिकका मशगला

बेदार— उसके मजकूरके[1] सिवा 'बेदार'!
और कुछ बात खुश नही आती॥

क़ायम— अब तो नै गुल न गुलसितॉ है याद।
उसी मुखड़ेकी हर जमॉं है याद॥

दर्द— हमें तो बाग़ तुझ बिन खानये-मातम[2] नजर आया।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम[3]॥

रोना-बिसूरना

मीर— सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

फानी बदायूंनी—'फ़ानी'को या जुनूँ[4] है या तेरी आरजू[5] है।
कल नाम लेके तेरा दीवानादार रोया॥

तारे गिनना

असर लखनवी— हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥

साकिब लखनवी—लूटनेवाले हमारी नींदके।
रात भर किस चैनसे सोते रहे!

जो प्रेम-रोगी अगारोपर लोटनेको, रोते-बिलखते जीते रहनेको और आँखोमें नीद काटनेको मजबूर हो जाये, जिसे मौत मॉंगेसे भी न मिले, वह जिन्दा दरगोर है—

---

[1]जिक्रके; [2]शोक-घर; [3]ओस; [4]उन्माद; [5]इच्छा।

फ़ानी बदायूंनी——नहीं जरूर कि मर जाएँ जाँनिसार[1] तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये॥

ऐसी हालतमे प्रेयसीको पत्र लिखकर अपनी दयनीय स्थितिसे अवगत कराना आशिकका स्वाभाविक धर्म है। वह विरह-ज्वरमे घुला जा रहा है और प्रियतमाको आभासतक नही——

दीपकको भावै नहीं जल-जल मरै पतंग

कभी वह स्वय भी मिलनेका प्रयास करता है, जो कि लाज़िमी है, मगर हमारे शाइरोने वह तिलकी तेलन बनाई है कि ख़ुदाकी पनाह——

आतशे-इश्क़ (प्रेम-ज्वाला)

ज़फ़र—— सोज़िशे-दाग़े-अलमसे[2] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥

भेजा, दिल, कलेजा, जब सब जल गये तो बचा क्या? और शाइर फिर यह बात कहनेको जीवित कैसे रहा? आजकल तो सीनेमे एक-दो खरोंच आ जाती है, तो कम्बख्त टी० बी० डिक्लेयर कर दी जाती है और मरीजकी चन्द दिनोमे ही राम-नाम सत बुल जाती है!

मज़मूने-सोजे दिल क्या था फास-फोरस था कि;—

ज़फ़र——उफ़! मेरे मज़मूने-सोज़े-दिलमें[3] भी क्या आग है!
खत जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा, जल गया!!

अमीर मीनाई——यही सोज़े-दिल है तो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥

वाइज़ा[4]! समझा है तू दोज़ख़ जिसे।
कुछ शरर[5] है आहे-आतशबारके[6]॥

---

[1]प्राण न्योछावर करनेवाले; [2]दुःखोकी आगसे; [3]हृदयकी दग्धतामे; [4]व्याख्यान दाता; [5]चिनगारी; [6]आह रूपी आगके।

जलाल—दागपर मेरे पड़ी सुरगाने-गुलशनकी[1] जो आँख।
　　सबने मिनकारोंमें[2] ले-ले कर गुलेतर[3] रख दिया॥

कमज़ोरी

गमे-हिज्रमे नातवाँ (निर्बल) होना भी स्वाभाविक है। मगर इस लफ़्फ़ाज़ी नातवानीको क्या कहा जाय? -

अमीर मीनाई— मेरे चेहरये-ज़र्दके[4] अक्ससे[5]।
　　हुई साक़िया! जाफ़रानी[6] शराब॥

वल्लाह! चेहरेका रग क्या रहा होगा? केसरके खेतमे भी शराब खीची जाय तो रग पीला न हो और एक 'अमीरमीनाई' है कि अक्ससे ही शराब ज़र्द हो गई। सुब्हान अल्लाह! क्या दरोग बयानी है।

असर देहलवी—बयाँ क्या करूँ नातवानी[7] मैं अपनी।
　　मुझे बात करनेकी ताकत कहाँ है॥

मोमिन — वह नातवाँ हूँ कि हूँ और नजर नहीं आता।
　　मेरा भी हाल हुआ तेरी ही कमरका-सा॥

　　जूँ निकहते-गुल[8] जुम्बिश[9] है जीका निकल जाना।
　　ऐ बादेसबा[10]! मेरी करवट तो बदल जाना॥

　　नातवाँ थ, पर न छेड़ा मिसले-ख़ार[11]।
　　ख़ुद उलझकर रह गये दामनमें हम॥

　　अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको।
　　जोफ़के[12] बाइस[13] कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है॥

---

[1]उद्यानके परिन्दोकी; [2]चोचोमे; [3]ताज़ाफूल; [4]पीले मुँहके; [5]प्रतिबिम्बसे; [6]केसरिया; [7]कमजोरी; [8]फूलकी गन्ध; [9]हिलना-डुलना; [10]पवन; [11]काँटेकी तरह; [12]कमज़ोरीके [13]कारण।

पाँव तुरबतपर[1] मेरी देख सँभलकर रखना।
चूर है शीशये-दिल[2] संगे-सितमसे[3] पिसकर॥

मनो मिट्टीके नीचे दाब दिये गये, और क़ब्र बनते समय जब कारीगरोने ठप-ठप की होगी, तब शीशये-दिल चूर-चूर होकर भी क्या बचा रहा था?

गालिब— गुंजाइशे-अदावते-अग़ियार[4] इक तरफ़।
याँ दिलमें ज़ोफ़से[5] हविसेयार[6] भी नहीं॥

अमीर मीनाई—वोह नातवाँ[7] हूँ जो लेटा कभी मैं बिस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥

लाग़िर[8] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं।
रह-रहके देखती है क़ज़ा[9] सरसे पाँवतक॥

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल[10] हूँ।
खटकूँगा और अपने अदूकी निगाहमें॥

सूखकर काँटा होनेका गम नही, खुशी इसी बातकी है कि अदूकी आँखोंमे खटक होगी। कोई पूछे, अदूको तो इससे खुशी ही होगी कि रास्तेका काँटा दूर हुआ न कि रज।[11]

---

[1]कब्रपर; [2]हृदय-दर्पण; [3]अत्याचारकी चक्कीसे; [4]प्रतिद्वन्द्वीकी शत्रुताके लिए दिलमें स्थान कहाँ?; [5]कमजोरीसे; [6]प्रेयसीकी चाह; [7]निर्बल; [8]पतला-दुबला; [9]मृत्यु; [10]ताजा पौदा।

[11]ज़ौक भी सूखकर काँटा होते है, मगर देखिए कितना पवित्र भाव व्यक्त करते है—

दस्तमें[1] आ जायगा लैला तेरे नाक़ेके[2] काम।
अच्छा हुआ मजनूँ तेरा जो सूखकर काँटा हुआ॥

मरते-मरते भी यही भावना है कि प्रेमीका उपयोग प्रेयसीके किसी काममें हो सके।

---

[1]रास्तेमे, सफरमे; [2]ऊँटनीके।

दाग़— क़ाहीदगीने[1] फेंक दिया दूर इस क़दर।
कोसों मैं आप अपनी नज़रसे निकल गया॥

नज़र आता हूँ न उस बज़्मसे उठ सकता हूँ।
नातवानीसे बड़े काम लिये जाते हैं॥

अब मेरे एवज़ उसे सँभालो।
मिलती नहीं नब्ज़ चारागरकी[2]॥

आशिककी नातवानी देखकर माशूकको रहम नहीं आता; बल्कि गुस्सा होकर कहता है कि इसने मेरी नजाकत उडा ली—

दाग़— नातवाँ देखकर अफ़सोस न आया मुझपर।
वोह ख़फ़ा है कि उड़ाई है नज़ाकत मेरी॥

गोया लखनवी— नातवाँ ऐसा हूँ गर साया[3] पड़ा दीवारका।
गिर पड़ी 'गोया' कि सक़्फ़े-आस्माँ[4] बालाए-सर[5]॥

आबाद लखनवी— लाग़र[6] हूँ इस क़दर कि दिखाई न दूँगा मैं।
अपनी तरह करेगा मुझे बेनिशाँ[7] दहन[8]॥

नासिख़— लाग़र हैं हम ऐसे कि निगल जाय ज्यों चिउँटी।
अटके न हमारा यह तनेज़ार[9] गलेमें॥

है गराँ[10] मकतूब,[11] तो कातिब[12] सुबक[13] है क़ासिदा[14]!
फैंक ख़त, ले चल हमारा जिस्मे-लाग़र हाथमें॥

इश्क़ी—अलमदद[15] ऐ ज़ोफ़[16]! ऐसा कर तू क़ाहीदाबदन[17]।
वोह परी रखले समझकर मुझको तिनका कानका॥

---

[1]कमजोरीने, शरीरके हलकेपनने; [2]चिकित्सककी; [3]परछाईं; [4]आकाशकी छत; [5]सरपर; [6]कमज़ोर, दुबला-पतला; [7]निशान रहित; [8]मुख; [9]दुर्बल शरीर; [10]भारी; [11]पत्र; [12]पत्रलेखक; [13]हलका; [14]पत्र-वाहक; [15]सहायता कर; [16]दुर्बलता; [17]निर्बल।

वज़ीर— हाथमें लेजा तने-लाग़र मेरा नामेके[1] साथ।
डर न ऐ क़ासिद! कि छः होती हैं अक्सर उँगलियाँ॥

ग़ालिब—हो जाऊँ मैं पामाल,[2] यहाँतक तो हूँ लाग़र।
चिउँटी भी जो शफ़क़तसे[3] रखे दोशपर[4] अंगुश्त[5]॥

नादर— पाँव जिस्मे-ज़ारपर मेरे पड़ा, बोला वोह शोख़—
"डाल दी है फ़र्शपर किसने यह सोज़न[6] ज़ेरे-पा?"

मोहसन—मैं वोह लाग़र हूँ यही समझा कुएँमें गिर पड़ा।
आगया है चिउँटियोंका जब कभी घर ज़ेरे-पा[7]॥

रोना-बिलखना

हिदायत— शबे-हिजराँमें तेरे, सुबहके होते-होते।
इस्तख़ाँ[8] शमअ्‌सिफ़त[9] बह गये रोते-रोते॥

मुसहफ़ी—रातदिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुलफ़ते-दिल[10]।
आजतक दामने-सहरा[11] है ग़ुबार-आलूदा[12]॥

मोमिन— जा-बजा नहरें हैं जारीं, मैंने अश्क[13]—
पूछे होंगे दामने-कोहसारसे[14]॥

ममनून—मेरे यह गर्म आँसू पूँछ मत दस्ते-हिनाईसे[15]।
कि इन आँखोंसे रहता है रवाँ[16] सैलाब[17] आतशका[18]॥

रश्क— अबकी जाड़े है और नाल-ओ-आह।
इस तरहका कोई अलाव[19] नहीं॥

दर्द— अश्कसे मेरे फ़क़त दामने-सेहरा नहीं तर।
कोह[20] भी सब हैं, खड़े ता-ब-कमर[21] पानीमें॥

---

[1]पत्रके साथ; [2]नष्ट; [3]कृपासे; [4]कन्धेपर; [5]उँगली; [6]सुई; [7]पाँवके नीचे; [8]हड्डियाँ; [9]मोमबत्तीकी तरह; [10]दिलकी भड़ास; [11]जंगलोंके क्षेत्र; [12]धूल-धूसरित; [13]आँसू; [14]पर्वतोंसे; [15]मेहदी लगे हाथोंसे; [16]जारी; [17]बहाव; [18]आगका; [19]ईंधन; [20]पहाड़; [21]कमरतक।

दर्द— बाजी बदी थी उसने मेरे चश्मे-तरके[1] साथ।
आखिरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

मोमिन—आग अश्के-गरमको[2] लगे, जी क्या ही जल गया!
आँसू जो उसने पूँछे शब[3] और हाथ जल गया ॥

सरूर— ऐसा फ़िराके-यारमें[4] रोया मै रातभर।
बिस्तरपै मेरे हो गया पानी कमर-कमर ॥

अज्ञात— इक दिन फिराके-यारमें रोया मै इस कदर।
चौथे फ़लक़पै[5] पहुँचा था पानी कमर-कमर ॥

अभी आपने तपिशे-हिज्र, नातवानी, रोने-बिसूरनेके लफ़्जी करिश्मे देखे। भला बताइए इसतरहके गपोडे भरे शेरोका किसीपर क्या असर होगा? शेर तो वास्तविक स्थितिके द्योतक, स्वच्छ हृदयसे लिखे जाये तभी उनका कुछ असर सम्भव हो सकता है। मगर ऐसे शेर जिनमे सत्य-का लेश नही, पडे हुए असरको भी नष्ट कर देगे।

विरह-ज्वरमे इतना तप रहा हूँ कि नाडी छूनेसे चिकित्सकके हाथमे छाला पड गया है। गमे-यारमे इतना कमजोर हो गया हूँ कि बिस्तरपर मौत भी ढूँढे तो न मिलूँ। इश्के-महबूबमे इतना रोया हूँ कि नदी-नाले एक हो गये है। आहो-फुगाँका यह आलम है कि पडोसियोंकी नीदे हराम हो गई है। ससारके सभी पर्वत मेरी आहोसे जलकर खाक हो गये है, और तुम्हारे कपोलपर जो काला तिल है, वह उन्ही पर्वतोका धुआँ है।

इसतरहके सफेद झूठभरे शेर जिसको भी लिखे जायेगे, झुँझला उठेगा। लेखकको सिडी-सौदाई समझेगा, और उससे दूरका वास्ता भी न

---

[1]आँसुओसे भीगे नेत्रोके; [2]गरम-गरम आँसुओको, [3]रात; [4]प्रेयसीकी जुदाईमे, [5]आस्मानपै।

रखेगा। उसकी परछाईंसे भी भागेगा।[1] पत्र-वाहकको भी दुतकार देगा, ज्यादा हेरा-फेरी करेगा तो पिटवा भी दिया जायगा और कहीं पठान या राजपूत किस्मका हबीब हुआ तो उसे गर्दन उतारते भी क्या देर लगेगी ?[2]

उर्दू-शाइरीमे इश्क़ प्राय: इकतरफा पाया जाता है। महबूबको आशिक़से दूरका भी सरोकार नही होता। भला कल्पना कीजिए कि इन शाइरोमे-से किसी एककी बहन-बेटीपर इनकी शाइरीमे वर्णित शोहदा, सिडी, आवारा-किस्मका कोई सरफिरा आशिक हो जाता और वह इनकी शाइरीके मुताबिक इनके कूचेमे आकर सीटियाँ बजाता, हर आदमीसे अपने इश्कका इजहार करते हुए इनकी बहन-बेटीके हुस्नका बयान करता, धक्के देनेसे भी न टलता, बिस्तर लगाकर इनके कूचेमे धरना दे देता, अँधेरे-उजालेमे मकानमे कूद जाता[3], चौकसीको दरबान रखते तो उन्हे फुसलाता,

इकतरफ़ा इश्क़

---

[1] जब मेरी राहसे गुज़रते हैं।
अपनी परछाईंसे भी डरते हैं॥

डरे न तो क्या करे? जब कोई सिडी या शोहदा भूतकी तरह पीछा करने लगे तो माशूक अपनी परछाईंसे भी डरे तो आश्चर्य भी क्या ?

[2] ग़ालिब— क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिए।
उसकी ख़ता नहीं है, यह मेरा क़ुसूर था॥

अमीर— जो लाश भेजी थी क़ासिदकी भेजते ख़त भी।
रसीद वोह तो मेरे ख़तकी थी, जवाब न था॥

[3] मोमिन—कूदकर घरमें जो पहुँचा मै तेरे, पर क्या करूँ ?
दम निकल जाता था खटकेसे बराबर रातको॥

चकमा देता, फकीरोका वेश बनाकर धोका[1] देता, गालियाँ देने[2] और धक्के मारनेसे भी न टलता तो इनके दिलपर क्या गुजरती। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा क्या रहती? इस तरहके अशआर लिखनेवालोने यह भी न सोचा कि हमारी भी बहन-बेटियाँ हैं। हमारी शाइरीका लक्ष्य यदि कोई उन्हे बना लेगा तो क्या हश्र होगा?

---

[1]ग़ालिब— गदा[1] समझके वोह चुप था, मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँके[2] लिये॥

दाग़— दरबाँको मिलाकर जो पुकारा उन्हें मैंने।
ख़ुद कहने लगे—"कौन है? वोह घरमें नहीं है॥"

दरबानके झगड़ेने बड़ा काम निकाला।
घबराके वोह निकले इसी तदबीरसे बाहर॥

यह मेरे वास्ते ताकीद है दरबानोंपर।
कि "उसे मैं भी बुलाऊँ तो न आने पाये॥"

दरपै आके जल्द तुम सुन लो जो है मेरा सवाल।
गर लगाई देर तो जानों कि साइल[3] घरमें है॥

देखकर दूरसे दरबाँने मुझे ललकारा।
न कहा यह कि "ठहर जाओ ख़बर करते है॥"

[2]दाग़— हम एक कहके सुनते हैं मुँहसे तेरे हजार।
लपका पड़ा हुआ है यह गुफ़्तो-शुनीदका[4]॥

दागको देखकर वोह कहते हैं—
"यह मरेगा भी बेहया कि नहीं॥"

रोज जाता हूँ नये रूपसे उसके दरपर[5]।
रोज रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

शेष अगले पृष्ठ पर

---

[1]फक़ीर; [2]दरबानके; [3]भिक्षुक, मँगता; [4]वार्त्तालाप सुननेका; [5]दर्वाज़ेतक।

जहाँ इस तरहकी अस्वाभाविक, कपोलकल्पित शाइरीका दौर-दौरा हो, वहाँ अश्लील शाइरीका होना भी लाज़िमी था। जब चारो तरफ़ कुओमें भग पडी हो, तब उसे पीकर लोग बावले न हों तो और क्या हो? मोमिन, अमीर, निजाम, दागका तो खैर ज़िक्र ही क्या, वह तो रंगीन शाइरीके लिए मानो पैदा ही हुए थे[1], ग़ालिब-जैसा

जब कूचेमे-से धक्के देकर निकाल दिये गये तो झूठ-मूठको बार-बार बीमार पड़ते रहे, ताकि शायद रहम खाकर आजाये—

अमीर मीनाई—आया न एक बार अयादतको[1] वह मसीह[2]।
सौ बार मैं फ़रेबसे[3] बीमार हो चुका॥

और जब बीमारीमे भी न आया तो मरनेका स्वाँग रचा कि शायद मौतकी खबर पाकर दुनियाकी जाहिरदारीको तो आये—

यारो लपेट देना जिन्दा मुझे कफ़नमें

झूठ-मूठके मरनेपर तो क्या, वह सचमुच मर जानेपर भी नही आता—

जोक— मर गये पर भी तग़ाफ़ुल[4] ही रहा आनेमें।
बेवफ़ा पूछे है—"क्या देर है ले जानेमें?"

और जब यह फ़रेब भी नाकामयाब हुआ तो अर्थीमे लेटकर उसके कूचेसे जनाज़ा निकलवाया कि शायद जनाज़ा देखते ही बाहर निकल आये—

सोज़— जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूचा है, टुक करते हाय-हाय चलो॥

[1]उक्त शाइरोका इस तरहका कलाम यहाँ हम जानबूझकर देनेसे गुरेज़ कर रहे हैं। अध्ययनशील व्यक्ति शेरो-सुख़नके पहले भागमे ऐसे नमूने पा सकेंगे।

---

[1]बीमारीका हाल पूछने; [2]ईसाकी तरह मुर्दोमे जान डालनेवाला माशूक़; [3]झूठ-मूठ; [4]उपेक्षा।

दार्शनिक और गम्भीर व्यक्ति भी कभी-कभी इसतरह वहकने लगता था—

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मै-परस्ती[1] एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन॥

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसा, मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

पीनसमें गुज़रते हैं जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नही देते॥

दरपै[2] पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

ग़ैरको या रब! वोह क्योंकर मनअ् गुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उसको आती है, तो शरमा जाये है॥

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा[3] नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती[4] एक दिन॥

इसप्रकारकी असम्भव, कल्पित और अश्लील शाइरीने गज़लकी आबरू धूलमे मिला दी। 'हाली' स्वयं गज़लगो शाइर थे। मगर उन्हे गज़लका यह पतन पसन्द न आया। १८५७ ई० के गदरके बाद मुसलमानोकी जो शोचनीय स्थिति हुई, बादशाहत और नवाबी मिट जानेसे जो उनकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचा, उसकी क्षति-पूर्ति असम्भव थी। उसपर भी तुर्रा यह कि वे इस तरहकी पतितोन्मुखी शाइरीमे उलझे हुए थे। 'हाली' को मुसलमानोका यह मृत्यु-महोत्सव पसन्द न आया, उन्होने मन-ही-मन गज़लको ख़त्म करनेका फैसला किया—

---

[1]शराब पीते समय; [2]दर्वाज़ेपर, [3]आदत, स्वभाव, [4]शुरुआत, प्रारम्भ।

सुख़नपर हमें अपने रोना पड़ेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा॥

अतः उन्होने स्वयं गजले कहनी बन्द कर दी; नज्म लिखनेको प्रोत्साहन देने लगे और इश्किया कलाम लिखनेवालोका सख्तीसे विरोध करते हुए बुलन्द स्वरमे फर्माया—

ऐ इश्क़ तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा

नज्म-आन्दोलन गजलके लिए बहुत मुबारक साबित हुआ। जाहिरामे तो इस आन्दोलनसे गजलको बहुत बडा धक्का लगा, मगर हकीकतमे उसका कायाकल्प हो गया। अपनी पतितोन्मुखी स्थितिका आभास मिलते ही वह कल्पना-

ग़ज़लका कायाकल्प

लोकसे उतरकर जीवनके वास्तविक आँगनमे आखडी हुई। ख़ारिजी, रवायती, फहाशी, तकल्लुफी, बनावटी बन्धनोको तोडकर स्वतन्त्र हो गई। वह अपना सकुचित दृष्टिकोण छोडकर विशाल क्षेत्रकी ओर अग्रसर हुई। उसने युगकी रुचिको देखते हुए अपने मनको स्वस्थ, प्रफुल्ल एव उदार बनाया, और परिधानमे भी आश्चर्यजनक सुरुचिपूर्ण परिवर्तन किया।

यद्यपि हाली और आज़ादसे करीब सवा सौ वर्ष पूर्व नजीर अकबराबादी इस किस्मकी शाइरीका श्रीगणेश कर गया था। मगर दुर्भाग्यसे तत्कालीन उर्दू-साहित्यकोने उसे शाइर ही तसलीम नही किया। वह केवल एक चुटकुलेबाज़से अधिक नही समझा गया। अतः उसके अनुकरणकी हिम्मत आगे कौन करता? 'नजीर' सिर्फ़ अपनी नजीर बनकर रह गया।[1]

'अनीस' और 'दबीर' आदिने मर्सियोंमे उन बहुत-सी बातोको समोया, जो गजलमे नही थी। मगर वह प्रयास सिर्फ इस्लाम

[1] "नजीर' उर्दूका सर्वप्रथम विशुद्ध भारतीय कवि हुआ है। इसका परिचय एव कलाम 'शेरोशाइरी' मे पृ० १७५-१९०मे मिलेगा।

मज़हबतक सीमित होकर रह गया, गजलमे कोई परिवर्त्तन नही हो सका।

हाली-ओ-आजादके आन्दोलनको सर सैयद अहमदके कारण बहुत बल मिला। वे उन दिनो मुसलमानोंके बडे और प्रभावशाली नेता थे, और सत्य बात तो यह थी कि वही इस आन्दोलनके मुख्य प्रवर्त्तक थे।

नज्म-आन्दोलनके बावजूद उस युगमे गजलके हिमायतियो, समर्थको और अनुयायियोंका बहुत बडा गिरोह था। उनमे अधिकाश लकीरके फकीर और पुराने ख़यालके थे, जो गज़लमे किसी किस्मका भी परिवर्त्तन, परिवर्द्धन एव सशोधन करनेके घोर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि गज़ल अपने चरमविकासको पहुँच चुकी है। पुराने उस्तादोके बनाये हुए कानून-ओ-कायदेमे तरमीम करना गुनाह ही नही कुफ़्र भी है।

मगर उन्ही दिनो गज़ल-स्कूलके कुछ ऐसे स्नातक भी थे, जिन्हे दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। जो कयामतकी चालका अन्दाज़ा रखते थे, लिफ़ाफा देखकर ख़तके मज़मूनको भाँप लेते थे। उन्होने यह महसूस किया कि यदि अब गजलका कायाकल्प नही किया गया तो उसका विनाश अवश्यम्भावी है। फिर उसे कोई नही बचा सकेगा।

नज्म उत्तरोत्तर तरक्की करती जा रही थी। दाग-जैसे रगीन गजल-गो उस्तादके—सर इकबाल, सीमाब अकबराबादी, जोश मलसियानी—जैसे तीनो शिष्य नज्मकी ओर आकर्पित हो चुके थे। लखनवी गज़ल-गो उस्ताद 'सफी' भी नज्म लिखने लगे थे। दुर्गासहाय सरूर, ज्वालाप्रसाद वर्क़, जगमोहनलाल रवाँ, ब्रजनारायण चकबस्त, इस्माइल मेरठी, नज़र लखनवी आदि जोशो-ख़रोशके साथ नज्मके मैदानमे उतर आये थे।[1]

---

[1]नज्म आन्दोलनका विस्तृत इतिहास और नज्म-गो शाइरोका परिचय एव कलाम हम 'शाइरीके नये दौर' नामक पुस्तकमे दे रहे है जो कि शीघ्र ही प्रेसमे दी जायगी। यूँ "शेरोशाइरी"मे पृ० २६१-५६८ तक सक्षिप्त इतिहास और १७ प्रसिद्ध नज्म-गो शाइरोका परिचय हम दे चुके है।

नज़्म-आन्दोलनके इतने प्रसारके बावजूद भी गजलके परिस्तारों, प्रशंसको और शाइरोंका बहुत वडा समूह था। जिस तरह् कि आर्यसमाजका धुआँधार प्रचार होनेपर भी सनातनियोका है। और परिस्तार भी किस गजलके? जिसकी वागडोर दागके हाथमे थी। उनके पूर्व हुए मोमिन, गालिवकी क्लिप्ट, गम्भीर, गहरी तथा नासिख़-स्कूलकी पेचीदा और लफ्फाज़ी शाइरीकी आम जनतातक रसाई नही थी।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा सर्वसाधारण उनकी शाइरीको समझने-की योग्यता ही नही रखते थे[१]। अधिकाश रगीन शाइरीके दिलदादा थे। ऐसी रुचिके लिए 'दाग'की और लखनऊकी शाइरी निहायत मौज़ूँ थी। यही कारण है कि उन दिनो कोई ऐसी महफिल न थी, जिसमे 'दाग' की गज़ले न गूँजती हो। कोई ऐसी तवाइफ नही थी, जिसे 'दाग़' की ग़जले कठस्थ न हों। हर जवॉ-बच्चेकी जबानपर दागकी गज़ले थिरकती थी। जिस मुशाइरेमे 'दाग' मौजूद हों, उस मुशाइरेमे किसी और शाइरका रग जमना नामुमकिन था। दागके अन्य समकालीनोका तो खैर ज़िक्र ही किया, स्वय हाली-जैसे पुख़्ता और मँजे हुए शाइरका रंग'दाग'के सामने न जम सका।

हम जिसपै मर रहे है, वोह है बात ही कुछ और।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?

हालीका उक्त शेर जनताको 'दाग'के इस चुलबुले शेरके सामने पसन्द न आया—

---

[१]वर्त्तमानमे शिक्षाका इतना प्रसार और सुरुचि परिष्कृत होनेपर भी उच्च साहित्यके पाठक कितने है? सस्ते और घटिया किस्मके नाविलोकी ही अधिक-से-अधिक खपत है।

मै-ख़ानेके क़रीब थी, मस्जिद भलेको 'दाग'।
हर-एक पूछता था कि "हजरत इधर कहाँ?"

और 'हाली' का यह शेर भी—

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत।
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत॥

'दाग' के इस शेरके सामने फीका पड गया—

बज़्मे-दुश्मनमें न खिलना, गुलेतरकी सूरत।
जाओ बिजलीकी तरह, आओ नजरकी सूरत॥

केवल 'दाग'के ही दो हजारके करीब शिष्य उस समय मौजूद थे। 'अमीर मीनाई', 'जलाल' आदिके भी सैकडो शिष्य थे और ये सब समूचे भारतमें बिख़रे हुए थे। सिर्फ दो-चारको छोडकर सभी इस किस्मकी शाइरीके आदी थे।

उधर नज्मको तरफ नये और पुराने लोग झुकते जा रहे थे। इधर गजल-गो शाइरोकी वही रफ्तार बेढगी थी। ऐसी विषम परिस्थितिमें भी कुछ शाइरोने साहससे काम लिया। गिरते हुए झडेको मजबूत हाथोमें थाम लिया और मरणोन्मुख गजलको वह जीवन-दान दिया कि आज वह पूरी आबो-ताबके साथ चमक रही है।

इन साहसी गज़ल-गो-शाइरोमे—१ सफ़ी लखनवी, २ अजीज़ लखनवी, ३आरज़ू लखनवी, ४ साकिब लखनवी, ५ शाद अज़ीमाबादी, ६ यगाना चगेजी, ७ फ़ानी बदायूनी, ८ असगर गोण्डवी, ९ हसरत मोहानी, १० जिगर मुरादाबादी, ११ सीमाब अकबराबादी और १२ जोश मलसियानी आदि विशेष उल्लेखनीय है।'

'इन सबका परिचय एव कलाम शेरो-सुख़न भाग २-३-४ मे दिया गया है।

हालीने दरअस्ल गजलका विरोध नही किया। उनका आशय यही था कि तत्कालीन (१९ वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे) गज़ल-गोईमे-

ग़ज़लकी आवश्यक विशेषतायें

अस्वाभाविकता, कृत्रिमता, अश्लीलता आदि जो दोष आगये थे, उन्हे दूर किया जाय। उनका कथन था कि—"गजलमे जो इश्क़िया मजामीन बाँधे जाये, वे ऐसे जामा अलफाज़मे अदा किये जाये जो दोस्ती और मुहब्बतके तमाम जिस्मानी और रूहानी ताल्लुकातपर हावी हो, और जहाँतक हो सके ऐसा कोई लफ्ज न आने पाये, जिससे माशूक औरत या मर्द मालूम हो सके। माशूकको हमेशा मुजक्कर (पुल्लिग) बाँधना चाहिए, और अमरदपरस्तीके खयालात क़तई बन्द कर दिये जाये। हबीबके हुस्नो-जमालका इज़हार बन्द किया जाय। अगर हबीब पर्दादार है तो कौन ऐसा बेवकूफ है जो अपनी बीबीके रान, तिल, बाल, वगैरहका हुलिया दूसरेको बताये और अगर हबीब बाज़ारी है तो उसका ज़िक्र करना अपनी ही रुसवाईका ढिढोरा पीटना है।" हालीके मतानुसार गज़लमे यह तीन खूबियाँ अत्यन्त आवश्यक है—

१ **सादगी,**

२. **स्वाभाविकता,**

३. **प्रभाव।**

सादगी

जो शाइर प्रकृतिकी ओरसे कवि-हृदय लाया हो, उसे ही इस ओर अग्रसर होना चाहिए। जो व्यक्ति शाइराना दिलो-दिमाग लेकर नही जन्मा है, उसे शाइरी कदापि नही करनी चाहिए। उस्तादोकी कृपासे शाइरीका व्याकरण तो आ सकता है, परन्तु शाइरी कदापि नही आ सकती। अगर उस्तादोके सिखायेसे शाइरी आ सकती तो मीर, मोमिन, ग़ालिबके उस्ताद उनसे बडे नामवर हुए होते। यह तो हृदयसे स्वयं

उबलनेवाला झरना है, जो सदैव स्वच्छ, निर्मल बहता है। बनाये हुए तालाबोंमे वह बात कहाँ? उनमे कूडा भर जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है। जो स्वभावतः शाइर होगा, उसकी शाइरीमे सादगी एवं सरलता होगी, वह शब्दकी व्यूह रचना नही करेगा।

स्वाभाविकता

जो शाइर स्वाभाविकता एवं वास्तविकताके जितने समीप होगा, कृत्रिमता, तकल्लुफ, अतिशयोक्तियोसे जितना बचकर चलेगा, उतना ही सफल शाइर होगा।

प्रभाव

शेरमे प्रभाव एव हृदयस्पर्शी क्षमता तभी आ सकती है, जब कि शाइरका हृदय भी शेरमे व्यक्त किये गये भावोसे ओतप्रोत हो। 'मीर' जो खुदा-ए-सुखन कहलाते हैं और उर्दूके सभी नामवर और बड़े शाइरोने उन्हे 'मीर' (सरदार, बड़ा) माना है, उनकी कामयाबीका राज यही था कि वे स्वभावतः शाइराना दिलो-दिमाग़ लेकर जन्मे थे। वे शौक़िया या रवायतन शेर नही कहते थे। अपितु जब वे कहनेपर मजबूर हो जाते थे, तभी वे शेर कहते थे। वे अपने पहलूमे एक ऐसा दर्दभरा दिल रखते थे, जिसकी टीस और चबक उन्हे जीवनभर बेचैन किये रही। उन्होने इश्किया शाइरी वक़्त काटनेकी गरज़से, हज-यात्राके मार्गमे तफरीहन नही की, और न वजू करते हुए उन्हे इमामे-मैख़ाना बननेका तसव्वुर हुआ। बल्कि उन्होने सचमुच इश्क किया था। वही हकीक़ते-इश्क और दास्ताने-गम उनके कलाममे प्रस्फुटित हुई है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर' ने।
तब आख़िरी जमानेमें यह रेख़्ता[1] कहा॥

---

[1]प्रारम्भमे उर्दूका और उर्दू-शाइरीका नाम रेख़्ता था।

हमको शाइर न कहो, 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दे-ग़म कितने किये जमा तो दीवान बना ॥

'मीर' को अपनी ही कौमकी एक लड़कीसे इश्क हो गया था। उसको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किये और कष्ट उठाये। सामाजिक बन्धनोको तोड़नेका साहस भी किया और पारिवारिक टक्करें भी ली, परन्तु सफलता न मिली। तमाम उम्र उसीकी चाहतमे काट दी और उस चाहतमे जो उन्हे व्यथा, टीस, वेदना, मिली, उन्होंने 'मीर' को वह क्षमता और वाणी प्रदान की, जिनपर सदियोसे शाइर सर धुनते आ रहे हैं। प्रायः सभी उत्तरवर्त्ती शाइरोंने उनके अनुकरणका प्रयत्न किया, परन्तु वह बात पैदा न हुई जो 'मीर' मे है। 'मीर, मीर है,। ज़ौकने जो ब-हसरत कहा था—

न हुआ, पर न हुआ, 'मीर'का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा ॥

अगर ज़ोर मारनेसे गज़ल प्रभावक एवं हृदयग्राही बन सकती तो फिर 'मीर' जैसे दुबले-पतले शाइरके बजाय 'नासिख़'-जैसे पहलवान 'ख़ुदा-ए-सुख़न' कहलाते।

शाइरीमे सोजो-गुदाज़ (हृदयको द्रवित करनेकी क्षमता) वह चीज है जो शेरमे सम्मोहन शक्ति फूँकती है। यह वह विशेषता है जो बग़ैर दिल जलाये पैदा नही होती। बाज लखनवी-शाइरोका ख़याल है कि— मैयत, लाश, लहद, नजअ़, मौत, दर्द, गम, रज, सदमा आदि शब्दोके इस्तेमालसे शेरमे सोजो-गुदाज पैदा हो जाता है। मगर यह बहुत भ्रामक ख़याल है। केवल इन शब्दोके प्रयोगमे लानेसे शेरमे सोज़ो-गुदाज़ पैदा हो सकता तो हर शाइर बा-आसानी 'मीर' बन बैठता। ज़ेवर-लिबास और शृंगारिक सामान ही अगर हसीन बना सकता तो कोई रईस औरत बदसूरत न रहती।

कलाममे सादगी, स्वाभाविकता और प्रभाव लानेके लिए यह ज़रूरी है कि शेर किसीके दबावसे, फर्माइशसे, या लालचवश नही कहना चाहिए। "अरबके मशहूर शाइर 'कैसर'से किसीने पूछा कि तूने शेर कहना क्यो छोड दिया? जवाब मिला—'जवानी जिससे उमग पैदा होती थी गुज़र गई। अब्दुल अजीज (पुत्र) जिससे सिलेकी तवक्कोह थी, वह भी न रहा। अब कौन-सी चीज बाकी है जो शेर कहलाये?' गोया उसने इस बातका इशारा किया है कि जबतक दिलमे किसी किस्मका जोश और वलवला न हो, उस वक्ततक शेर अजाम नही हो सकता। एक शाइरका कौल है कि बाज औकात मेरा यह हाल होता है कि दाँतको मसूडोसे उखाडना मुझको ज्यादा आसान मालूम होता है, ब-निस्बत शेर कहनेके। यानी बगैर तबियतके और दिली जोशके शेर सरजाम नही हो सकता।"[१]

उर्दू-शाइरीके लिए यह बहुत बडा अभिशाप रहा है कि अधिकाश-शाइरोको बे-मनकी शाइरी करनी पडी है। कभी बादशाहो-नवाबो-रईसोकी फर्माइशोंपर, कभी उनकी शादियो और खुशियोके मौकोपर लोभवश, कभी मुशाइरोंमे शिरकत करनेके लिए, अशआर कहने पड़े है। यही कारण है कि अधिकाश शाइरोकी गजले बेनमक और फीकी होती है। गजलमे एक-दो शेर ही ऐसा होता है जो मनपर असर करे, और बेमनकी शाइरी मनपर असर न करे तो इसमे आश्चर्यकी बात भी क्या है?

हर्ष है कि वर्त्तमान युगीन अधिकाश शाइर इस दोषसे बचनेका यथा-शक्ति प्रयत्न करते है और शेर जब अपनेको उनसे कहलवाता है तभी कहते है।

डालमियानगर
८ अगस्त १९५३ ई०

---

[१]हाली-मुकदमये-शेरोशाइरी उर्दू।

सिंहावलोकन
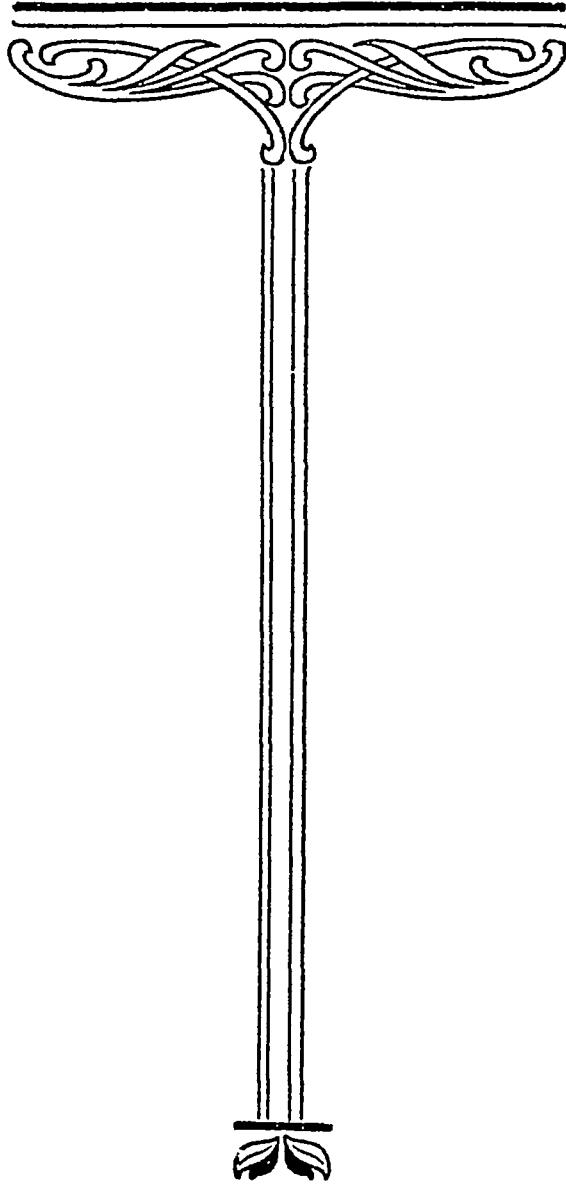
उत्तरार्द्ध

[१९०१ से १९५७ तक की ग़ज़लगोई

७

उर्दू-शाइरीपर अँगरेजी-साहित्यका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अँगरेजीके प्रसारसे पूर्व उर्दू-शाइरीका एक मात्र माध्यम फारसी-शाइरी था।

शाइरीमे परिवर्त्तनके कारण

उसका अनुकरण एवं पुराने विचारोंकी पुनरावृत्ति करते रहना ही तत्कालीन उर्दू-शाइरोका एकमात्र लक्ष्य रह गया था। गजलका क्षेत्र सीमित था। इस सीमित क्षेत्रमे कोई कहाँतक उड़ान भरता? 'गालिब'ने ग़ज़लमे पहले-पहल परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन किया और इसमे उन्हें बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभासे अनेक मौलिक विचारोका गजलमे इस कौशलसे समावेश किया कि गजल नये आबो-ताबके साथ चमकने लगी और अब वह केवल मानसिक अभिरुचिको तृप्त करनेके बजाय जीवनोपयोगी भी होने लगी।

गालिबकी इस सूझ-बूझसे शाइरोको एक नवीन दिशाका ज्ञान हुआ और गजलका क्षेत्र भी पहलेकी अपेक्षा काफी विस्तृत हुआ, किन्तु गालिबकी प्रतिभाके लिए तो असीमित क्षेत्रकी आवश्यकता थी। स्वय अकेले वे कहाँतक इस क्षेत्रको विस्तृत करते रहते? लाचार उन्हें कहना पडा—

कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरे बयाँके लिए

यही वुसअ़त (विस्तीर्णता) उर्दू-शाइरीको अँगरेजी-साहित्यसे प्राप्त हुई। अँगरेजी-कविताएँ प्रेमके अतिरिक्त—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, राष्ट्रीय आदि अनेक जीवनोपयोगी एवं सामयिक विचारोसे ओत-प्रोत होती थी। विश्वकी मुख्य-मुख्य घटनाओंको बहुत सुरुचिपूर्ण ढगसे अँगरेजी कविताओं-द्वारा व्यक्त किया जाता था।

अँगरेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय शाइरोंपर इन कविताओका बहुत अधिक

प्रभाव पड़ा। वे भी उर्दू-शाइरीको परिपूर्ण बनानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे।

अँगरेज़ी पढे-लिखे उर्दू-शाइर अँगरेज़ी कविताके विस्तारसे तो प्रभावित हुए, परन्तु सौभाग्यसे अँगरेज़ी-सस्कृतिसे कोई लगाव नही रखा। अँगरेज़ी-कविताका अन्ध-अनुकरण न करके, उन्होने अपने समाज, देश, सस्कृति आदिको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया। वे अपने देशके—वनो-पर्वतों, दरियाओ-वाटिकाओं, सुन्दर नगरों, भव्य इमारतोंकी ललित कलाओ एवं मोहक दृश्योको नज्म करने लगे। अपने देशके पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषोंके गुणोका नज्मो-द्वारा बखान करने लगे। कला केवल कला न रहकर अब वह जीवनोपयोगी बनने लगी।

उन दिनो भारतका वातावरण भी ऐसी शाइरीके लिए बहुत अनुकूल एव उपयुक्त था। १८५७ ई० के विप्लवके बाद भारतके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रोंमे एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी। अँगरेज़ोंके भारतपर अधिकार जमा लेनेके कारण भारतीय सशकित हो उठे कि कही राज्यके साथ-साथ धर्म-मज़हब, सस्कृति एवं तमद्दुनसे भी हाथ न धोना पडे। इन्हे सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दू-मुसलमानोंमे होड़-सी लग गई। हिन्दुओने विश्वविद्यालय और गुरुकुलकी नीव डाली तो मुसलमानोने यूनिवर्सिटी, मकतब तामीर किये। हिन्दू-मुसलमानो-द्वारा सभाएँ और अजुमने बनाई जाने लगी। पत्र एव अख़बार निकाले जाने लगे। समाजोत्थान और राष्ट्रीय-चेतनाको उभारनेके लिए नज़्मे और कविताएँ लिखी जाने लगी। 'हाली' ने मुसद्दस लिखकर मुसलमानोंके कौमी जज़्बेको उभारा तो 'इक़बाल'ने देश-प्रेमका बीजारोपण किया। नौबतराय 'नज़र', दुर्गासहाय 'सरूर', ज्वालाप्रसाद 'बर्क़' आदि शाइरोने पौराणिक, ऐतिहासिक, महापुरुषोके जीवन नज्म किये तो इस्माइल मेरठीने बालकोपयोगी नज्मे लिखी। अँगरेज़ी कविताओको उर्दू-नज्मका रूप दिया। कोई प्राकृतिक दृश्योको नज्म करने लगा तो कोई भव्य नगरों और इमारतोंकी कलाओंको उजागर करने लगा।

अभीतक उर्दू-शाइरीमे वतनीयत (देशभक्ति) का वह शदीद जज्बा नही आया था, जिसकी वतनको अजहद जरूरत थी। सौभाग्यसे उन दिनों बंगालमे बंग-भंगके विरुद्ध आन्दोलन छिड़ गया। इस आन्दोलनको सफल बनानेमे समूचा बगाल प्राणपणसे जुट गया। क्रान्तिकारी दल संगठित किये गये। आग्नेय गद्य-पद्य-द्वारा लार्ड कर्जनकी 'बंग-भग' नीतिकी तीव्र भर्त्सना की गई, और इस आन्दोलनको इतना बल दिया गया कि इसकी लपटें समूचे भारतमे फैल गईं। बगालियों-द्वारा लिखी गई बंग-प्रेमकी कविताएँ जब अन्य प्रान्तोंमे पहुँचीं तो अन्य भाषा-भाषी कवि उनसे काफ़ी प्रभावित हुए और वे प्रान्तीय क्षेत्रसे निकलकर समूचे भारतको अपना देश समझने लगे और देश-प्रेम-सम्बन्धी नित-नई कविताएँ लिखने लगे। उर्दू-शाइरीपर भी इस आन्दोलनका काफी प्रभाव पड़ा और उसमे बहुत तेजीसे वतनीयतके जज्बे उभरने लगे। इस क्षेत्रमे प० बृजनारायण चकबस्तने आगे बढ़कर धौंसेपर चोट जमाई और देश-प्रेमके वे राग अलापे कि लोग वज्दमे आगये।

प्रथम महायुद्ध, रौलट-ऐक्ट, जलियानवालाबाग-गोलीकाण्ड और असहयोग आन्दोलनके कारण शाइरीने एक नया मोड लिया! इस इन्क-लाबी शाइरीके जन्मदाता हज़रत 'जोश' मलीहाबादी है। उन्होने देश-प्रेम, हिन्दू-मुसलिम ऐक्यपर सैकडों नज़्में लिखी। साम्प्रदायिक सघर्षोंकी बड़े तीव्र शब्दोमे भर्त्सना की। भारतके स्वतन्त्रता सम्बन्धी प्रत्येक पहलूपर उन्होंने इतना लिखा कि भारतका कोई भी कवि उनकी हमसरी नही कर सका! 'सीमाब' अकबराबादी, सागर निज़ामी आदिने भी इन विषयोंपर बहुत काफ़ी लिखा। किसान-मजदूर, पूँजीपति, मुफ़लिसकी ईद, गरीबकी दीवाली, आदिपर बहुत काफ़ी लिखा गया।[1]

द्वितीय महायुद्धके दिनोंमे—ब्लेकआउट, कण्ट्रोल, राशनिग, परमिट,

---

[1]विशेष परिचय 'शाइरीके नये दौर' मे मिलेगा।

चोर-बाजारी, कहते-बगाल, एटमबम, आजाद हिन्द फौज, सुभाषचन्द्र बोस, लालकिला, हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन स्टालिन, अन्धी लडाई, १९४२ के स्वतन्त्रता-सग्राम आदिपर न जाने कितनी नज्मे लिखी गई और १९४७ के बाद तो नज्मोका एक सैलाब-सा आ गया। भारत-विभाजन, साम्प्रदायिक-हत्याकाण्ड, हिजरत, शरणार्थी, करफ्यू, दरिन्दे, जब इन्सान वहशी बन गया, जश्ने-आजादी, आजादीके बाद, सुबहे-आजादी, वतनमे आखिरी रात, आदि हजारो नज्मे कही गई और कही जा रही है।[1]

इन नज्मगो शाइरोमे पुरातनवादी, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, काग्रेसी, साम्यवादी, समाजवादी, मुसलिमलीगी आदि सभी विचार-धाराओके है और अपने-अपने ढगसे अपनी भावनाओको व्यक्त करते रहते है।

नज्म और ग़ज़ल

इस दौरमे नज्मकी बाढ इतनी द्रुतगतिसे आई कि मालूम होता था, ग़ज़ल तिनकेके समान बह जायगी, लेकिन वह बहनेके बजाय उत्तरोत्तर विकसित एव उन्नत होती गई।

एक-दो वर्ष पूर्वतक नज्मोने खूब जोर पकडा, किन्तु अब वह आँधी थम गई है और गजल पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है। इसका कारण यही है कि छोटी-से-छोटी बातको नज्मम बहुत बढा-चढाकर विस्तारसे व्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत गज़लमे बडी-से-बडी बातको एक-दो शेरोमे समो दिया जाता है। नज्मगो शाइर कुएँको तालाब बनाते है; गज़लगो शाइर गागरमे सागर भरते है।

सक्षेपमे यूँ समझिए कि गजल सूत्र है, नज्म भाष्य है। गज़ल कहानी है, नज्म उपन्यास है। गज़ल सकेत है, नज्म स्वीकृति है। गज़ल सूक्ति है, नज्म काव्य है। गजल हृदयकी अनुभूति है, नज्म शाइरीका प्रदर्शन है।

नज्मोमे अधिकतर सामयिक घटनाओ, तत्कालीन रीति-रिवाजों

---

[1] इन सबका विस्तृत परिचय 'शाइरीके नये मोड' मे मिलेगा।

आदिका उल्लेख रहता है। इसलिए उसमे स्थायित्व नही आने पाता। अक्सर देखा जाता है कि जो नज़्म एक समयमें इस सिरेसे उस सिरेतक आम हो जाती है, वही चन्द दिनोमे विस्मरण कर दी जाती है। इसके विपरीत गज़लमे जो भी कहा जाता है, वह रगे-तग़ज़्ज़ुलमे कहा जाता है; जिससे कि समय और रुचिके अनुसार लुत्फ उठाया जा सकता है। सामयिक घटनाओंका उल्लेख समयपर तो इजेक्शनका काम करता है, परन्तु समयके साथ धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो जाता है। वग-भग, रौलेट-ऐक्ट, जलियानवाला बाग, असहयोग-आन्दोलन, बृटिश-शासन-विरोधी नज्मोंको आज कौन पूछता है ? पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक, सुधार आदि आन्दोलन सम्बन्धी और नेताओंकी प्रशस्तियोंमे लिखी गई नज्मोंका युग समाप्त हो गया है। दूर क्यो जायें, द्वितीय महायुद्धके प्रारम्भसे १९५२ ई० तक—हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, राशनिंग, चोर बाज़ारी ,भारत-विभाजन आदिपर न जाने कितनी नज़्मे लिखी गई, परन्तु आज वे इतनी जल्दी आउट आफ डेट हो गई है कि उनके रचयिता भी उन्हे सुनानेमें सकोचका अनुभव करते है। हालाँ कि जब लिखी गई थी, तब उन्हीका चर्चा चारों तरफ था।

किसी भी तरहके प्रचारके लिए नज्म अत्यन्त उपयोगी साधन है, उसका प्रभाव तुरन्त होता है, लेकिन आवश्यकतापूर्ण होते ही उसका असर भी समाप्त हो जाता है। गजल, आन्दोलन आदिके लिए विशेष उपयोगी नहीं। उसका महत्त्व सुख-शान्तिके दिनोमे मालूम होता है।

नज्मके इतने प्रबल वेगके समक्ष भी गजल पाँव जमाये खड़ी रही और पूरे जाहो-जलालके साथ जलवागर रही, इसका कारण यही है कि वर्त्तमान

ग़ज़लकी उन्नतिके कारण

ग़ज़लकी बागडोर जिनके हाथोंमे आई, उनका व्यक्तित्व साहित्यिक समाजमे महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित था। वे उन पुराने उस्तादोंके जानशीन थे, जिनके झडे बज़्मे-अदबमे गडे हुए थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व ऐसा था कि नज़मगो शाइर भी उनका आदर एवं सम्मान

करते थे। उनमें-से बहुत-से नज्मगो शाइर या तो उनके गुरु-भाई थे, या उनके शिष्य थे। परस्पर संघर्षका तो कोई प्रश्न ही नही था। नज़्म और गज़ल दो महत्त्वपूर्ण कला थी। साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेके लिए अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किन्हीने नज़्मको और किन्हीने गज़लको अपना लिया।

वे नज्मगो शाइर, जिनकी शाइरीका प्रारम्भ गज़लगोईसे हुआ था और जो ग़ज़लगो उस्तादोंके शिष्य थे, नज्मोंके साथ गज़लें भी कहते रहे। इक़वाल, चकवस्त, सीमाब, जोश मसलियानी, सफ़ी लखनवी, नज़र लखनवी, दत्तात्रेय कैफी, वर्क़ देहलवी, असर लखनवी, हफीज़ जालन्धरी, सागर निज़ामी, रविश सद्दीकी आदि नज़्म और ग़ज़ल दोनो ही कहते रहे। इसीतरह अधिकाश तरक़्क़ीपसन्द एवं प्रगतिशील नव-युवक शाइर भी ग़ज़ल कहते रहते है। हालाँकि उनको ख्याति नज्मगोईके कारण मिली।

वर्त्तमानयुगीन जिम्मेवार ग़ज़लगोशाइरोने युगानुसार गज़लमे अनेक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किये। वे धीरे-धीरे अपना लबो-लहजा बदलते गये, सुधार करते गये! दृष्टिकोणको व्यापक और उदार बनाते गये। समयानुसार नये-नये भाव समोते गये। परिणाम इसका यह हुआ कि गज़ल आज पूरे आबो-तावके साथ चमक रही है।

ग़ज़लपर एतराज़

गज़लपर अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमे हुस्नो-इश्क़, रिन्दो-मैखाना, और गुलो-बुलबुलकी दास्तानके अतिरिक्त न तो तत्कालीन घटनाओंका उल्लेख किया जाता है, न सामयिक विचारोंको महत्त्व दिया जाता है, और न अन्य लोकोपयोगी भावोंका समावेश होता है।

ग़ज़लगो शाइर भरी बहारमें बैठे हुए बहारको रोते रहते है। देसमे चाहे आग लग रही हो, चाहे क्रान्तियाँ प्रस्फुटित हो रही हों, चाहे विप्लवोंकी आँधियाँ आ रही हों, चाहे भुखमरी और महामारियाँ ताण्डव नृत्य कर

रही हों, गजलगो शाइर तब भी अपनी धुनमें मस्त मैखानेमे झूमते हुए, वीरानोंमें मजनूंनावार घूमते हुए और गुलशनोमे भी रोते-बिसूरते हुए नजर आयेंगे। ऐसे ही शाइरोसे खीजकर मौ० मुहम्मदहुसेन आजाद यह कहनेपर मजबूर हुए थे—

हैफ़ आता है कि खोई उम्र मज़मूं बांध-बांध।
ऐसी बन्दिशसे तो बेहतर था कि छप्पर बांधते॥

उक्त आक्षेप किन्ही गजलगो शाइरोंपर चस्पाँ हो सकते हैं, परन्तु सभीके लिए इसतरहकी धारणाएँ उचित नही, और अब तो ग़ज़लका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण होता जा रहा है और उसमे नित नये परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन होते जा रहे है। ग़ज़लगो शाइरोंने प्रायः सभी आवश्यक विषयोपर प्रकाश डाला है। जीवन-सम्बन्धी हर तथ्यपर उनकी दृष्टि रही है। बक़ौल शख़्से—

ग़ज़लका मर्म

यह और बात है दुनिया उन्हें न पहचाने

खेद है कि सर्वसाधारण उनके इन जौहरोसे अनभिज्ञ है। सर्वसाधारण तो खैर सर्वसाधारण है, वे उन्हे परखनेको दिव्यदृष्टि कहाँसे लाते? आश्चर्य तो इसका है कि अच्छे-अच्छे सुख़न-फ़हम भी गजलका वास्तविक मूल्य न आँक सके। आजकी बात जाने दीजिए। पुराने जमानेमे ख़ुदाए-सुख़न 'मीर'के समकालीनोमे—सौदा, दर्द, सोज, और नौजवानोमे—कायम, यकीन, असर, तावाँ, बेदार, जिया, हसन, बयान, अफसोस—जैसे ख्यातिप्राप्त शाइर मौजूद थे। दिन-रात मुशाइरोंकी धूम रहती थी। फिर भी 'मीर'को यह कलक रहा कि उनके जौहरको परखनेवाले जौहरी न मिले। इस कलक़को उन्होने पचासों बार अनेक तरहसे व्यक्त किया है—

किस-किस अदासे रेख़्ते[1] मैने कहे वलेक[2]—
समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दयारमे[3]॥

'मीर' का उक्त शिकवा बेजा नही है। गजलके शेरका वास्तविक आशय समझनेके लिए उसीके अनुकूल दिलो-दमाग और वातावरण होना चाहिए। शाइरने जिस वातावरणसे प्रभावित होकर या जिस लक्ष्यको लेकर शेर कहा है। यदि उसे पढ़ते समय पाठकके मन एवं मस्तिष्ककी स्थिति भी तदनुरूप होगी तो उस शेरके जौहर पूरे आबोताबके साथ जलवा-गर हो जायेगे, अन्यथा जैसे हजारो वस्तुएँ जीवनमे रोजाना नज़रोसे गुज़रती रहती है, वैसे ही वह भी गुज़र जायगा और हम उसके वास्तविक तथ्यसे लाभान्वित न हो सकेगे।

मेरी नजरोसे सैकड़ो शेर रोज गुजरते है। मीर-ओ-गालिब आदिके दीवान न जाने कितनी बार पढे है। जब भी पढ़े है, उनमे नई-नई खूबियाँ नजर आई है। पढते समय जिस स्थितिमे मन एवं मस्तिष्क होता है, उसीतरहके शेर आँखोमे चमकने लगते है। 'गालिब'के इसी शेरको लीजिए—

गो हाथमें जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है।
रहने दो अभी साग़रो-मीना मेरे आगे[4]॥

उक्त शेर ब-जाहिर तो कतई रिन्दाना है, और शेरके बाह्य अर्थसे आम आदमियोके मनोमे सम्भवत· यही भाव उदित होगे कि शाइर कितना

---

[1]उर्दू-शाइरीका पहला नाम; [2]लेकिन; [3]ससारमे;
[4]हाथमे सागर एव मीना उठानेकी शक्ति नही रही तो न सही, अभी आँखोमे तो देखनेकी सामर्थ्य शेप है। पी नही सकता, मगर उन्हे देखनेका तो आनन्द उठा सकता हूँ। इसलिए सागर एव मीना सामने ही रखे रहने दिये जाये।

हविस परस्त एवं पियक्कड है कि पीनेकी सामर्थ्य न रखते हुए भी उसके मोहमे लिप्त है। इस शेरको 'शेरोशाइरी'मे देते हुए भी मै इसके अन्तरंगसे परिचित था; परन्तु आप बीती घटनाने जो शेरका लुत्फ़ दिया, वह बयानसे बाहर है।

१४ अक्तूबरसे १५ दिसम्बरतक खाँसीकी पीड़ाके कारण मुझे चारपाईपर पड़ना पडा। मौत जब बार-बार आकर झाँकने लगी तो डाक्टरो और हितैषियोंने लिखने-पढनेकी सख्त पाबन्दी लगा दी। शेरोसुखनके २, ३, ४ भाग इलाहाबाद ला जर्नल प्रेसमे कम्पोज़ हो चुके थे। उनके प्रूफकी मै बहुत उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा था। अपने जीवनकालमे ही उनके छपवानेकी लालसा मुझे कुरेद-कुरेदकर खाये जा रही थी। रुग्ण-शैयापर पडा हुआ बहुत बे-सब्रीसे रोजाना प्रूफ आनेका इन्तज़ार करता रहता था। प्रतीक्षा करते हुए जब कई रोज हो गये, तब मैने ज्ञानपीठके मैनेजर श्री बाबूलालजी फागुल्लसे पूछा तो उन्होंने हिचकिचाते हुए कहा कि "प्रूफ तो कई रोज़से आये पड़े है, परन्तु डाक्टरके परामर्शानुसार आपको नही दिखाये गये है।" मैने कहा—"कौन कम्बख्त उन्हें पढना चाहता है, मगर भगवान्के वास्ते तुम उन्हे मेरे सामने मेजपर तो रख दो ताकि मै उन्हे पड़ा-पडा निहार तो सकूँ।" फागुल्लजीने प्रूफ़ लाकर रखे ही थे कि कई हितैपी बन्धु आ गये। उन्होंने जो प्रूफ मेरे पास देखे तो फागुल्लजीको उठा लेजानेके लिए इशारा किया। मैने रखे रहनेकी मिन्नत की, तो बोले—"जब प्रूफ़ पढनेकी इजाज़त नही है तो सामने रखनेसे क्या लाभ?" हितैषियोकी नासहाना नसीहत सुनकर मै तड़प उठा और बेसाख्ता गालिबका उक्त शेर मुँहसे निकल पड़ा। आँखे डबडबा आईं और मन भारी हो गया। हितैषियोने मेरे मनकी व्यथाको समझा और प्रूफ वही पडे रहने देकर मुझे मानसिक शान्ति पहुँचाई। इतने दिनो बाद मै उस रोज़ गालिबके उक्त शेरके अभिप्रायको महसूस कर सका, और यह भी यकीन नही कि अब भी ठीक-ठीक समझ पाया हूँ।

ग़ज़ल इतनी भावपूर्ण कोमल कला है कि उसके वास्तविक रहस्यको पारखी दृष्टि ही जान सकती है। उसकी अपनी निजी भाषा, भाव, उपमा, अलकार और शैली है। अपने भाव व्यक्त करनेका अपना निजी लबो-लहजा और ढंग है।

ग़ज़लका बार पत्थरकी तरह सीधा न होकर दुशालेमे लिपटा हुआ होता है। ग़ज़लगो शाइर खुदाकी बात कहे या शैतानकी, आध्यात्मिकताकी गुत्थियाँ सुलझाये या आधिभौतिकताकी, तात्त्विक विवेचन करे या राजनीतिक घात-प्रतिघातका वर्णन, उसे सब ग़ज़लकी सीमाके अन्तर्गत कहना पड़ता है। सीमाके बाहर कहा हुआ शेर ग़ज़लका शेर नही कहला सकता। वह तग़ज़्ज़ुल (ग़ज़लगोई) से गिरा हुआ शेर होगा। ग़ज़लमे सीधे भाव व्यक्त न करके पर्देमे कहे जाते है।

इक आफ़ते-जमाँ है यह 'मीर' इश्क़-पेशा।
पर्देमें सारे मतलब, अपने अदा करे है ॥

ग़ज़ल संकेतात्मक शाइरी है। चाहे उसमें कैसे ही भाव व्यक्त किये जायें; वे सब गुलो-बुलबुल, साक़ी-ओ-मैख़ाना एव हुस्नो-इश्क़ आदिके पर्देमें कहे जाते है। बक़ौल 'ग़ालिब'—

हरचन्द हो मुशाहद-ए-हक़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है, बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर[1] ॥

और इन बादा-ओ-सागरकी आड़मे कहे हुए भावोंको समझना आसान नही—

---

[1]ईश्वरीय चर्चा (मुशाहद-ए-हक़की गुफ्तगू) करनेके लिए भी शराब और सुराही जैसे शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य है। ग़ज़लमे उसकी निश्चित उपमाओंका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

'मीर' साहबका हर सुख़न है रम्ज़[1]।
बे हक़ीक़त है शेख़ क्या जाने॥

जो बात कही जाय, वह रगे-तगज्जुलमे कही जाय, यही ग़ज़लगो शाइरका बहुत बड़ा कमाल है। यूँ तो अध्ययन एवं अभ्याससे और गुरुकी अनुकम्पासे जो चाहे, वही व्यक्ति गज़ल कह सकता है; परन्तु तगज्जुल जिस भावपूर्ण एव सकेतात्मक कलाका नाम है, उसमे सफलता प्राप्त करना हँसी-खेल नही। बकौल 'मीर'—

है नज़्मका सलीक़ा हरचन्द सबको लेकिन—
जब जाने कोई लावे यूँ मोतीसे पिरोकर॥

मोतीसे पिरोनेकी कलामे दक्षता प्राप्त करनेके लिए अपनेको डुबोना और खपाना पड़ता है। गजल हुस्नो-इश्क एवं दर्दो-गमकी शाइरी है। ग़ज़लका शेर प्रभावोत्पादक तभी होगा, जब वह उसीके अनुरूप दिलो-दमाग़ रखनेवाले शाइरने कहा होगा।

मीर— 'मीर' तब गर्मे-सुख़न कहने लगा हूँ मै कि इक उम्र।
जूँ शमअ़ सरे-शाम ता-सुबह जला[2] हूँ॥

क्या करूँ शरह ख़स्ता जानीकी?
मैने मर-मरके ज़िन्दगानी[3] की॥

आबलेकी-सी तरह, ठेस लगी, फूट बहे।
दर्दमन्दीमें गई, सारी जवानी उसकी॥

---

[1]सकेत, भेद पेचीदा बात है।

[2]जीवनका बहुत अधिक अश मोमबत्तीकी तरह रात-दिन जलता-गलता रहा है, तब कही हृदयको स्पर्श करनेवाली कविता करने लगा हूँ।

[3]अपने व्यथापूर्ण जीवनको विस्तारसे क्या कहूँ। केवल इतना काफी है कि मैने मर-मरके जीवन व्यतीत किया है।

इश्क़में खोये जाओगे तो बातकी तह भी पाओगे।
क़द्र हमारी कुछ जानोगे, दिलको कही जो लगाओगे ॥

आज़ार खींचनेके मज़े आशिक़ोसे पूछ।
क्या जाने वोह कि जिसका कहीं दिल लगा न हो ॥

हृदय प्रेमसे ओत-प्रोत हो, मन इतना सवेदनशील हो कि दीन-दुखियो-को देखकर द्रवित हो उठे। जीवनभर शमअकी तरह गलता रहे, तब कही कलाम प्रभावोत्पादक बन पाता है। रग और तूलिकाके सहारे चित्र तो बन जाता है, परन्तु मुँह बोलती तसवीर नही बन पाती। यह तभी बन पाती है जब चित्रकार अपनेको खो और डुबो देता है।

दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर'।
आहो-नाले असर करें क्योंकर ॥

गुलो-बुलबुल, साकी-ओ-मैखाना, हुस्नो-इश्क आदि रूपको-द्वारा गज़लका निर्माण होता है। यही गज़लके प्राण है। इनको बगैर समझे गज़लका वास्तविक मर्म हृदयंगम नही हो सकता। इन रूपकोसे ही गजलके शेरमे रगे-तगज्जुल आता है। इन्ही रूपकोसे सोजो-गुदाज पैदा होता है। यही हृदयतन्त्रीको झंकृत कर देनेकी उमे शक्ति देते हैं। यही उसमे शेरियत लाते है।

गज़लके रूपक

गुलो-बुलबुल

गुलो-बुलबुलकी आड लेकर गज़लगो शाइरोने राजनीतिक दाव-घातो, शोषितों, पीड़ितो आदिके सम्बन्धमे इस खूबीसे कहा है कि सब कुछ कहनेपर भी वे गिरफ्तमे नही आसकते। गुल, बुलबुल, गुलशन, बाग़बाँ, सैयाद, गुलची, कफस, आशियाँ यह सब रूपक[1] हैं, जिन्हे गजलगो शाइर अपने मनोभाव व्यक्त करनेके लिए उपयोग करते है। जो शाइर इन

---

[1]इन सब रूपकोपर शेरोशाइरी, पृ० ८०-९२ मे विस्तारसे प्रकाश डाला गया है।

रूपकोंके गूढ अर्थसे अपरिचित होते हुए भी शेर कहते हैं, वह स्वयं भी उपहासास्पद होते हैं और शाइरीको भी दूषित करते हैं। ऐसे ही शाइ-रोंकी बदौलत गजल बदनाम हुई। एक पुराने लखनवी शाइरका शेर है—

बाग़में जाते तो हो पहने गुलाबी टोपी।
बुलबुले-बे-अदब आ बैठे न ऐ जाँ सरपर॥

यह बेचारा शाइर इतना ही जानता था कि बुलबुल गुलाबके फूलपर आशिक रहती है। अतः उसकी कल्पनाने जोर मारा तो वह केवल इतनी उड़ान भर सका कि बुलबुल फूलके धोकेमें गुलाबी टोपीवालेके सरपर भी बैठ सकती है।

वह गरीब जब ग़जलके अन्तरगसे और उसके रूपकोके वास्तविक भावोंसे परिचित ही न था, तब इसके सिवा वह कहता भी क्या? अब रंगे-तगज्जुलके चन्द अशआर दिये जाते हैं—

दुबले-पतले महात्मा गाँधी जब बन्दी किये गये तो देशमे एक मातम-सा छा गया था। उस भावनाको 'साक़िब' लखनवीके शब्दोमे यूँ व्यक्त किया जा सकता है—

कहनेको मुश्ते-परकी[1] असीरी[2] तो थी, मगर—
ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ॥

बन्दी-गृहमे पडे हुए भी यदि शत्रुका कोई भेद मालूम हो जाय तो जैसे भी बने उसे देशके कर्णधारोतक पहुँचा देना चाहिए—

साक़िब— **किसीका रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिलसे।**
नजर सैयादकी झपके तो कुछ कह दूँ अनादिलसे[3]॥

---

[1]मुट्ठीभर परोंकी; [2]गिरफ़्तारी; [3]बुलबुलोसे।

सोनेके पिंजरेमे पराधीन जीवन बितानेकी अपेक्षा रूखी-सूखी खाकर झोंपड़ेमे रहना हज़ार दर्जे बेहतर—

आरज़ू— ऐ 'आरज़ू'! इस बाग़में फूलोंके क़फ़ससे[1]।
बहतर हमें वोह अपना नशेमन[2] कि है ख़सका[3]॥

शरीफो एव लुच्चोको एक लाठी हाँकनेवाला शासक अन्धा नही है तो और क्या है।

आरज़ू— अदू[4] न थी, मगर अन्धी ज़रूर थी बिजली।
कि देखे फूल, न पत्ते, न आशियाँ, देखा॥

देशकी सुख-समृद्धिका उपयोग करनेवाले देशके दुर्दिनोमे भी अपने देश-प्रेमका परिचय दे—

जिगर— काँटोंका भी हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

हमारी आँखोके सामने हज़ारो देश-भक्त गोलीसे भून दिये गये, फाँसी चढा दिये गये और हम अशक्त बने सब कुछ देखते रहे। कैसी दयनीय स्थिति थी—

सफ़ी— ज़ोर ही क्या था जफ़ा-ए-बाग़बाँ[5] देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया हम नातवाँ[6] देखा किये॥

चन्द शेर बगैर टीका-टिप्पणीके दिये जा रहे है। सुविधाके लिए उनके ऊपर शीर्षक लगा दिये हैं—

अकर्मण्यता

असर— यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने ?

---

[1]पिंजरेसे; [2]घोसला; [3]घास-फूसका; [4]शत्रु; [5]मालीका अत्याचार; [6]कमजोर।

सामर्थ्यके अनुसार

आनंदनारायण मुल्ला—अपनी क़ूवत[1] आजमाकर अपने बाज़ू[2] तोलकर।
आर्शि-ए-हस्तीमें[3] उड़ना है तो उड़, पर खोलकर॥

सहृदयता

महशर— तमाम उम्र इसी एहतयातमें[4] गुजरी।
कि आशियाँ किसी शाखे-चमनपै बार[5] न हो॥

सुखमें दुःख छिपा है

ख़ुर्शीद— क़फ़स दूर ही से नजर आ रहा है।
क़यामत है अपनी बुलन्द आशियानी[6]॥

क्षण-भंगुर वैभव

मीर— कहा मैंने "कितना है गुलका सबात[7]"?
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[8] किया॥
देर[9] रहनेकी जा नहीं यह चमन।
बूए-गुल हो, सफ़ीरे-बुलबुल हो॥

यह कृपालुता ?

अदीब सहारनपुरी—कौन इस तर्जे-जफ़ाये[10]-आसमाँकी दाद दे?
बाग़ सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया॥

---

[1]ताकत; [2]बाहुओंको; [3]जीवन-आकाशमे; [4]सावधानीमे; [5]बोझ; [6]ऊँचाईपर घोंसला बनाना; [7]निवास, स्थायित्व; [8]मुसकान; [9]स्थायी, अधिक; [10]अत्याचारके ढगकी।

साक़ी-ओ-मैख़ाना

गज़लमे वर्णित, शराब रिन्द, मैखाना, साक़ी आदिसे जनसाधारण वास्तविक मद्य-प्रसारका तात्पर्य समझते हैं। उन्हे क्या मालूम कि जिन गज़लगो शाइरोने कभी शराब छूई तक नही, वे भी इस विषयपर जीवन-पर्यन्त लिखते रहे। क्योकि यह सब भी गज़लके अत्यन्त आवश्यक रूपक हैं। इनके बगैर काम ही नही चल सकता। यहाँ हम चन्द शेर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे हैं। आशा है उनके शीर्षकोसे भावोके समझनेमे कोई कठिनाई न होगी।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

मुल्ला— कभी तेगो-क़लमसे भी मिटे है तिफ़रके[1] दिलके।
मिटाना है तो पहले रखके साग़र दरमियाँ समझो॥

लालची

रियाज़— मक्सूद[2] है कोई न पिये वोह हरीस[3] हूँ।
वाइज़[4] हुआ, मै रिन्द क़दहख़्वार[5] क्या हुआ॥

दानीसे

अदम— शिकन न डाल जबींपर शराब देते हुए।
यह मुसकराती हुई चीज़ मुसकराके पिला॥

आलोचकोसे

दिल— तेरी फ़र्दे-अमल[6] हो पाक[7] इस दुनियामें ऐ वाइज़[8]!
कोई पीता है पीने दे, कहीं ढलती है ढलने दे॥

---

[1]वैमनस्य; [2]उद्देश्य, तात्पर्य, इच्छा; [3]लालची, ईर्ष्यालु; [4]व्याख्यान-दाता; [5]मद्यप; [6]कर्मोकी तालिका; [7]पवित्र, उज्ज्वल; [8]नसीहत देनेवाले।

शासन-व्यवस्थापकोसे

मुल्ला— निज़ामे-मैकदा[1] साक़ी! बदलनेकी जरूरत है।
हजारों है सफ़ें[2] जिनमें, न मै आई, न जाम आया॥

वुसअ़ते-बज़्मे-जहाँमें[3] हम न मानेंगे कभी।
एक ही साक़ी रहे, और एक पैमाना रहे॥

ये छिद्रान्वेषी

ताविश सुल्तानपुरी—जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
खुदाका खौफ़ कैसा? वोह तो इसयाँपोश[4] है साक़ी!

कलके ढोंगी, आज नेता

मीर— मस्जिदमें इमाम[5] आज हुआ, आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' ख़राबात-नशीं[6] था॥

चेतावनी

मीर— ऐ वोह कोई जो आज पिये है शराबे-ऐश।
ख़ातिरमें रखियो कलके भी रंजो-ख़ुमारको॥

हुस्न-ओ-इश्क़

गज़ल, हुस्नो-इश्क़ और सोज़ो-गुदाज (व्यथा-वेदना) की शाइरी है। जिन गजलगो शाइरोको कभी किसीपर मरनेकी सआ़दत मयस्सर

---

[1]मधुशालाका प्रबन्ध; [2]पंक्तियाँ; [3]संसारके व्यापक क्षेत्रमे; [4]अपराधोपर पर्दा डालनेवाला, पाप ढकनेवाला; [5]नमाज़ पढ़ानेवाला; [6]मधुशाला-निवासी।

न हुई, उनको भी कूचये-हुस्नकी नग्मासराई करना लाजिमी होती है। क्योकि गजलका निर्माण ही हुस्नो-इश्कके तन्तुओसे हुआ है।

गज़लके बाह्य रूपसे ऐसा मालूम होता है कि गजलगो शाइर कूच-ए-महबूब (प्रेयसीकी गली) मे फटेहाल दीवानावार घूमते रहते है। माशूकके दरबानोसे पिटते है, जलीलो-ख्वार होते है; मगर वहाँसे टलनेका नाम नही लेते। महबूब (प्रेयसी) उनकी हरकतोसे नालाँ है; मगर वे खतोका ताँता बाँधे रखते है। खत ही नही भेजते, दरबानकी निगाह बचाकर स्वय भी मकानमे कूद जाते है। माशूककी गालियाँ खाते है, दुतकारे जाते है, मार सहते है, घायल होते है, मगर अपनी हरकतोसे बाज़ नही आते। गोया ज़लीलो-ख्वार बने रहनेके अतिरिक्त उन्हे कोई अन्य कार्य नही है। न उनके पत्नी है, न बच्चे है, न गुरुजन है और न उनके पास कोई लोकोपयोगी कार्य है।

लेकिन शेरका अतरग देखिए तो कुछ और ही आलम नज़र आता है। यह नही भूलना चाहिए कि गज़लगो शाइर हर बात इशारेमे और पर्देमे बयान करता है। कभी वह विश्व-वेदनाको अपनी वेदना बनाकर गमे-जानाँके पर्देमे पेश करता है[1] और कभी अपनी वेदनाको विश्वभरकी वेदना समझकर गमे-दौराँके रूपमे पेश करता है।[2] यानी जो वह ससारमे देखता और सुनता है, वह इश्को-हुस्नके पर्देमे बयान करता है। ब़कौल 'मीर'—

---

[1]**जो ग़म हुआ, उसे गमे-जानाँ बना लिया**

यानी सासारिक आपदाएँ किसी भी कारणसे आये, वे सब इश्ककी वजहसे आई। यही समझकर उसका उल्लेख गजलमे किया जाता है।

[2]हमपर अकेले ही यह आपदाओका पहाड़ नही टूटा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पडा कराह रहा है। उन सबका दु:ख दूर होनेमे ही अपना कल्याण है। यही भावना गमे-दौराँ है।

कहिएगा उससे क़िस्स-ए-मजनूँ।
यानी पर्देमें ग़म सुनाइयेगा॥

अर्थात्—गजलगो सब बाते रूपको-द्वारा पर्दमे कहता है। चन्द उदाहरण देखिए—

बादशाहत मिटनेपर मुगलिया सल्तनतका मिट जाना, इतनी बड़ी घटना है कि उसपर नज्मगो शाइर पोथा लिख सकता है, परन्तु गज़लगो शाइरको तो एक ही शेरमे सब कुछ व्यक्त करना चाहिए और वह भी रगे-तगज्ज़ुलमे। मुगलिया सल्तनतके मिटनेसे, शाहजादो और शाहजादियोंके इधर-उधर भटकनेसे और दिल्लीके उजड़नेसे प्रभावित होकर 'मीर'ने अपनी कई गजलोमे इस तरहके भाव व्यक्त किये हैं—

नाम आज कोई याँ नहीं लेता है उन्होंका।
जिन लोगोंके कल मुल्क यह सब ज़ेरे-नगीं था॥

था मुल्क जिनके ज़ेरे-नगीं साफ़ मिट गये।
तुम इस ख़यालमें हो कि नामो-निशाँ रहे॥

सब्ज़ाने-ताज़ा-रौकी[1] जहाँ जलवागाह[2] थी।
अब देखिए तो वाँ नहीं साया[3] दरख़्तका॥
दिल्लीमें आज भीक भी मिलती नहीं उन्हें।
था कल तलक दमाग़ जिन्हें ताजो-तख़्तका॥

'मीर'के उक्त चारो शेर व्यथा-पूर्ण है और तत्कालीन इतिहासका एक झलकमे दिग्दर्शन करानेमे कमाल रखते हैं, किन्तु इन अशआरमे रगे-तगज्ज़ुल नही दिखलाई देता। गजलके प्राण हुस्नो-इश्कके रूपकका कही भी उल्लेख नही हुआ।

---

[1]हरे-भरे पेडोकी, [2]रौनक, [3]छाया।

उजडी हुई दिल्लीमे वैठकर मिर्ज़ा 'गालिब' इसी घटनाको रगे-तगज्जुलमे देखिए किस सलीकेसे व्यक्त करते है—

दिलमें ज़ौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नहीं।
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया[1]॥

इतने वडे विध्वसकी वात 'गालिब'ने किस ख़ूबी और सादगीसे कही है कि कानूनकी ज़दमे भी न आये; सुख़न-फहम लुत्फ अन्दोज़ भी हो सके और जन साधारण ज़ौके-वस्लके चक्करमे ही पडे रहे।

पिछले पृष्ठोमे 'तगज्ज़ुल' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। तगज्ज़ुलसे हमारा आशय गज़लगोईसे है। कवितामे जव तक कवित्व न हो, कविता नही। मिठाईमे मिठास, मेहदीमे लाली, फूलमे सुगन्ध और आदमीमे आदमीयत होना आवश्यक है तो गज़लमे तगज्जुलका होना भी जरूरी है। तगज्जुलके विना ग़ज़ल वेजान, वेमज़ा और फीकी है। गज़लमे उसके रूपकोके मिश्रणसे रगे-तगज्ज़ुल पैदा होता है।

रंगे-तग़ज्ज़ुल

चन्द उदाहरण—

जौककी गज़लका एक मशहूर शेर है—

नाम मंज़ूर है तो फ़ैज़के[2] असबाब[3] बना।
पुल बना, चाह[4] बना, मस्जिदो-तालाब बना॥

शेरके वज़नने शाइरको इजाजत नही दी, वरना मतब,[5] मकतब[6]

---

[1]अव हमारे हृदयमे ज़ौके-वस्ल (प्रेयसीके मिलनकी अभिलाषा) और यारकी याद तक वाकी नही है। क्योकि हमारे हृदयरूपी घरमे ऐसी आग लगी है कि सर्वस्व भस्मीभूत हो गया।

[2]उदारताके, दानवीरताके, [3]कार्य; [4]कुआँ; [5]औषधालय; [6]स्कूल।

आदि और भी नेक कामोकी फ़हरिस्त नज्म की जा सकती थी। शाइरने जिस भावनासे प्रेरित होकर शेर कहा है, उसमे वह सफल हुआ है। लेकिन इस शेरमे तगज्जुल तलाश करनेपर भी नही मिलता। खालिस मौलवियाना रगका शेर है। अगर मौलवियो-जैसी बेतुकी बाते शाइर भी कहने लगे तो फिर उनकी विशेषता क्या रही? 'अज़ीज़' लखनवी नेक काम करनेकी प्रेरणा यूँ करते है—

पैदा वोह बात कर कि तुझे रोयें दूसरे।
रोना ख़ुद अपने हालपै यह ज़ार-ज़ार[1] क्या?

शेरमे नेक कामोंकी कोई सूची नही है, फिर भी उसके पढ़नेसे मनको प्रेरणा मिलती है। आशिक़ सदैव रोता-बिसूरता रहता है। ग़ज़लके इसी रूपकको देनेसे शेरमें तगज्जुल भी आ गया और चूँकि शाइरने स्वयंको सम्बोधित करके लिखा है; ज़ौक़की तरह दूसरोंको नसीहत नही की। इसलिए मौलवियतके इलज़ामसे भी बरी रहे। इसी भावके द्योतक दो शेर 'मीर'के भी मुलाहिज़ा फर्माएँ—

बारे[2] दुनियामें रहो ग़मज़दा[3] या शाद[4] रहो।
ऐसा कुछ करके चलो, याँ कि बहुत याद रहो॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर।
पर हो सके तो प्यारे टुक दिलमें भी जगह कर॥

आशय तो अज़ीज़का भी यही था कि हम ऐसे भले काम करे कि दूसरे हमे याद करे। मगर 'याद'के बजाय उन्होंने 'रोये दूसरे' नज्म किया। दूसरों-के रोनेसे लानत-मलामतका भी आशय निकलता है कि लोग कहे "कम्बख़्त

---

[1]बिलख-बिलखकर; [2]चाहे; [3]शोक-सन्तप्त; [4]प्रसन्न।

आप तो मर गया और हमे मार गया।" सताये हुए लोग बुरोकी जानको उनके मरनेके बाद भी रोते रहते है। इस ऐबसे 'मीर'का उक्त पहला शेर बेदाग है—

ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो

याद प्यारेकी और भले आदमियोकी आती है बुरोंकी नही।

'मीर'का दूसरा शेर दूसरेको नसीहत देनेकी वजहसे मौलवियतके दायरेमे आजाता, किन्तु 'मीर'का कमाल देखिए कि दामन बचाकर साफ निकल गये। दूसरे मिसरेमे 'प्यारे' शब्द डालकर 'मीर'ने वोह रगे-तगज्जुल पैदा कर दिया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे है।

'हाली'का यह शेर बहुत मशहूर है—

"खेतोंको दे लो पानी यह बह रही है गंगा।"
कुछ कर लो नौजवानो! उठती जवानियाँ है॥

'हाली'की नज्मका उक्त शेर अपनी जगहपर बहुत खूब है और नवयुवकोको स्फूर्ति एव प्रेरणा देता है। चूँकि उक्त शेर नज्मका है, इसलिए इसमे रगे-तगज्जुल नही आ पाया है। रगे-तगज्जुलमे इसी भावका द्योतक तस्लीमका शेर है—

इल्तफ़ाते-जोशे-वहशत[1] फिर कहाँ?
हो सके जबतक बयाबाँ देख लें॥

जवानी दीवानी नही हुई तो फिर जवानी क्या? और उस हालतमे कुछ हाथ-पाँव न मारे तो फिर दीवानगी क्या? इसलिए जो बन सके इस दीवानगीमे कर ले, फिर अवसर हाथ न आयेगा।

---

[1]दीवानगीकी यह कृपाएँ फिर कहाँ मयस्सर? इसी आलममे जितना जगल देखा जा सके देख लिया जाय।

बात तो 'तस्लीम'ने भी 'हाली' जैसी कही, परन्तु किस खूबसूरतीसे कही है। 'जोशे-वशहत', 'बयाबाँ'के नगीने जडकर रगे-तगज्जुलमे चार चाँद लगा दिये और 'देख ले' शब्द डालकर रिन्दाना शेर बना दिया और नसीहत देनेकी जहमतसे भी साफ़ बच गये। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादीने देखिए कितने सलीकेसे पेश किया है—

यह बज़्मे-मैं है, याँ कोताह दस्तीमें है महरूमी।
जो बढ़कर खुद उठाले हाथमें, मीना उसीका है॥

शेरका ज़ाहिरा मतलब तो सिर्फ इतना है कि 'यह शराबख़ाना है, यहाँ पीछे रहनेमे नुकसान है। यहाँ तो आपा-धापी मची हुई है, जो आगे बढकर प्याला झपट सकता है, वही पी सकता है।' मगर रिन्दाना अन्दाज़मे 'शाद'ने इन दो मिसरोमे वोह स्फूर्ति, प्रेरणा और आग भरी है कि जिसका जवाब नही।

'हाली'की गज़लका एक शेर है—

ऐ इश्क! तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोड़ा॥

शेर पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि मौलाना 'हाली' ताँगेमे बैठकर कॉलिजोके आगे चक्कर लगा रहे हैं; और माइक्रोफोनपर वह गजल, जिसका एक शेर ऊपर दिया गया है, चीख़-चीख़कर पढ रहे है और लडके है कि तालियाँ पीट रहे है।

इसी मजमूनको एक शाइर देखिए किस सुरुचिपूर्ण ढगसे पेश करते है—

ऐ इश्क़! देख हम भी है किस दिलके आदमी।
महमाँ बनाके ग़मको कलेजा खिला दिया॥

इश्क, दिल, गम आदि शब्दोंसे शेरमे सोज़ो-गुदाज पैदा कर दिया और नासहाना दाग भी नही लगने दिया। अब 'मीर' का भी एक शेर

बगैर किसी टीका-टिप्पणीके सुन लीजिए और मेरी तरह बैठे हुए सर धुनिए—

इश्क़ आदममें नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी॥

मिर्ज़ा दागका एक शेर है—

यहाँ भी तू, वहाँ भी तू, ज़मीं तेरी, फ़लक तेरा।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज़ आजतक तेरा॥

स्पष्ट है कि शेर खुदाके लिए कहा गया है। अब देखिए इसी भावको 'मीर' मजाजी इश्कमे किस विश्वासके साथ फर्माते है—

है इस चमनमें वोह गुल, सदरंग महव देखो।
देखो जहाँ वही है, कुछ उस सिवा न देखो॥

'दाग' यह जानते हुए भी कि ईश्वर सर्वत्र है, उसके जलवेसे वचित रहते है। 'मीर' उसका जलवा सर्वत्र देखते है। दोनोके विश्वास और प्यारमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। इसके अतिरिक्त दागके शेरमे तगज्जुल नामको नही और 'मीर'का शेर चमन, गुल, सदरग, महव आदि शब्दोसे तगज्जुलका बेमिसाल शेर हो गया है।

मौलाना ज़फरअलीका एक शेर है—

यह है पहचान खासाने-खुदाकी इस ज़मानेमें।
कि खुश होकर खुदा उनको गिरफ़्तारे-बला करदे॥

प्रकट रूपमे तो इस शेरमे उसी पुरानी धारणाको नज्म किया गया है कि ईश्वरभक्तो और भले मनुष्योपर सदैव मुसीबतोके पहाड टूटते रहे है, और यह सब इसलिए होता है, ताकि ईश्वर अपने असली-नकली भक्तो एव अच्छे-बुरे मनुष्योकी पहचान कर सके। वह महज़ आज़मानेके लिए यह सितमजरीफी करता है, क्या खूब?

किसीकी जान गई आपकी अदा ठहरी

यदि वह घट-घटका ज्ञाता है तो फिर उसे यह ज़हमत उठानेकी ज़रूरत भी क्या, किसीको बग़ैर सताये भी वह अपने दिव्यज्ञानसे सब कुछ जान सकता है। लेकिन नही, जिसपर वह बहुत खुश होता है, महरबानी फर्माकर उसे बलाओं-आफतोमे घेर देता है।

ख़ुदाकी इन्ही सितमज़रीफियोसे तग आकर सर 'इकबाल'ने उससे पूछा था—

इसी कोकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा[1]॥

ख़ुदाकी इन नाज़िल की हुई मुसीबतोसे घिरे हुए मिर्जा गालिब कितने वेदना भरे स्वरमे कराह उठते है—

जिन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुजरी या रब!
हम भी क्या याद रखेगे कि ख़ुदा रखते थे॥

'बहार' कोटिका यह उलाहना कितना व्यथापूर्ण है—

वहीं हज़ारों बहिश्तें भी हैं ख़ुदाबन्दा!
सिसक-सिसकके कटी जिन्दगी जहाँ मेरी॥

लेकिन आशिकके मनमे यह भाव भी आना अधर्म है कि मुझ निरपराधको किन पापोकी सज़ा मिल रही है। बकौल राज़ यज़दानी—

---

[1]इसी नक्षत्रके प्रकाश (कोकबकी ताबानी) से तेरा ससार जग-मग हो रहा है। फिर भी तू इसीको मिटा रहा है। मै पूछता हूँ, तेरी इस हरकतसे स्वय तेरा नुकसान हो रहा है या मेरा? जब तू ख़ुदा-ख़ुदा कहनेवालोको मिटा डालेगा, तब तुझे ख़ुदा कौन कहेगा? इन्हीकी बदौलत तो तू ख़ुदा बना हुआ है।

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह।
कोई क़ुसूर भी तुझसे कभी हुआ कि नही॥

हम भी कहाँकी बात कहाँ ले गये। हमे कहना सिर्फ इतना था कि मौ० ज़फरअलीका ज़ाहिरा आशय केवल इतना है कि ख़ुदा जिनपर महरबान होता है, खुश होकर उन्हे बलाओमे फँसा देता है। यानी उन्होने ख़ुदाकी आड़मे उस हकीकतको उजागर किया है, जो कि हमारे जीवनमे अक्सर घटित होती रहती है। यानी हमारे महरबान, शुभचिन्तक, प्यारे-मीठे ही हमे अक्सर मुसीबतोमे फँसाते रहते है। बकौल किसीके—

दोस्तों से हमने वोह सदमे उठाये जानपर।
दिलसे दुश्मनकी अदावतका गिला जाता रहा॥

जफरअली और उक्त शाइरने एक बातको दो तरीकोसे बयान किया है, और उसमे वे बेहद कामयाब हुए है। मगर तगज्जुलकी चाश्नीके बगैर शेरमे शेरियत नही आ पाती। अब ज़रा 'मीर'का रगे-तगज़्ज़ुल भी मुलाहिजा फर्माएँ—

जफ़ा उसपै करता है हदसे जियादा।
जिसे यार अहले-वफ़ा जानता है॥

उक्त शेरका लुत्फ स्वानुभवी ही उठा सकते है। पत्नी या प्रेयसीके बिगडने-रूठने, जिद करने या तग करनेपर उससे कहा गया हो कि "जब देखो तुम हमारे सरपर चढी रहती हो, हमे इतना तग न किया करो।" तब उसका तेवर बदलकर कहना—"तुम्हारे सिवा मेरा और है ही कौन, जिसपर मै झूँझल उतारती फिरूँ? अपनेपर ही तान टूटती है, दूसरा कौन सुनता है?"

'मीर'का शेर पढिए और प्रयत्न कीजिए कि आपका भी कोई ऐसा अपना हो, जो आपपर जफा करना अपना हक समझता हो। तब शायद

आप 'वासित' भोपालीके इस शेरको पढनेके हकदार हो सकें—

उस ज़ुल्मपै क़ुर्बां लाख करम, उस लुत्फ़पै सदक़े लाख सितम।
उस दर्दके क़ाबिल हम ठहरे, जिस दर्दके क़ाबिल कोई नहीं॥

शब्दोके रख-रखावकी यही वह कोमल कला है, जो गज़लको कही-से-कही पहुँचा देती है। मश्के-सुखनसे गज़ल तो हर कोई कह सकता है, मगर उसमे जान नही डाल सकता। जान डालनेके लिए अपनी जान खपानी पड़ती है। दर्दे-दिलसे परिचित हुए बिना दास्ताने-गम बयान नही हो सकती। बकौल 'मीर'—

लज्जतसे दर्दकी जो कोई आश्ना नहीं।
सौ लुत्फ़ क्यों न जमा हों, उनमें मज़ा नहीं॥

नई ग़ज़लगोई

वर्त्तमान युगीन गज़लमे कितना अभूतपूर्व सशोधन, परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन हुआ है? उसका बाज़ारी इश्क, हरजाई माशूक, बुलहविस आशिक परिवर्त्तित होकर कितने बुलन्द हो गये है? गजलमे कैसे-कैसे अछूते मज़मूनोका समावेश हुआ है, और गजलगो शाइरोने कैसे-कैसे बेदाग हीरे तराशे है? लगे हाथ एक नजर उनको भी देखते चलिए।

उद्धरणमे इसी युगके शाइरोके शेर दिये जा रहे है, ताकि वर्त्तमान युगीन गजलगोईकी प्रगतिका सही-सही अन्दाजा लग सके। तुलनाके लिए पुरानी शाइरीका उल्लेख करते समय उसी युगके शेर उद्धृत किये जा रहे है, और जहाँ नवीन शाइरीमे पुरानी शाइरीकी झलक मालूम होती है, वहाँ तुलनाके लिए फुटनोटमे प्राचीन शाइरोमे सर्वश्रेष्ठ 'मीर'के अशआर दिये जा रहे है; ताकि पुरानी और नई शाइरीकी गति-विधिका ठीक-ठीक आभास मिल सके।

उर्दू-गजलमे हरजाई एव बाजारी माशूकका तसव्वुर दरबारी-वाता-

वरण, तत्कालीन वेश्यासक्तिकी आम प्रथा और फारसी शाइरीके अन्व अनुकरणके कारण आया। यदि तत्कालीन गजलगो शाइर हिन्दी-कविताका अनुसरण करना अपनी शानके ख़िलाफ समझते थे, अथवा हिन्दीसे अनभिज्ञ होनेके कारण उसके गुणोसे परिचित नही थे, तो भी यदि वे फ़ारसीके वजाय अरबी-शाइरीका अनुकरण करते तो उर्दू-शाइरी पाक इश्कसे मालामाल हुई होती।

पाक इश्क

अरबी-शाइरीका इश्क भी इन्सानी इश्क है, किन्तु वह कामुकता एव वासनाके दोषसे मुक्त है। प्रेमी-प्रेमिका एकान्तमे बैठे हुए है, किसीकी दृष्टि पडनेका भी उन्हे खटका नही है; परन्तु क्या मजाल कि दोनोमे-से किसीके हृदयमे भी काम-वासना निहित हो। दोनो प्रेम-विभोर हुए बैठे है। यह बात प्रसिद्ध है कि एक बार ऐसे ही अवसरपर किसी प्रेमीने अपनी कामवासना व्यक्त की तो प्रेमिका क्रुद्ध होकर बोली—"क्या इसी लिए तुम मुझसे प्रेम करते थे?" प्रेमिकाके यह शब्द सुनकर प्रेमी गद्-गद हो गया। उसे अपने भाग्यपर अभिमान हुआ कि उसे इतनी पवित्र और सुशीला नारीसे प्रेम करनेका सौभाग्य प्राप्त हो सका। फिर उसने अपनी प्रेयसीपर वास्तविक बात प्रकट कर दी कि उसने परीक्षास्वरूप ऐसा प्रस्ताव किया था। यदि तनिक भी स्वीकृतिका सकेत मिला होता तो उसे महान् क्लेश पहुँचता और यह खजर उसने सीनेमे उतार लिया होता।[1]

प्रेयसीसे शादी करना या वासना तृप्त करना, प्रेम नही, प्रेमका शव पीटना है, कामुकताको प्रेम कहना शैतानको खुदा कहना है—

आरज़ू— **हविसकार[2] आशिक़ भी ऐसा है, जैसे—**
वोह बन्दा कि रख ले ख़ुदा नाम अपना॥

---

[1]मजामीर पृ० २६; [2]कामुक।

बिना किसी वासना या स्वार्थके प्रेममे आठो पहर भीगा रहे, वही प्रेम शुद्ध प्रेम है—

असर— इश्क़ है इक निशाते-बेपायाँ[१]।
शर्त यह है कि आरज़ू[२] न रहे॥

आसी— आशिक़ीमें है महवियत[३] दरकार।
राहते-वस्ल[४]-ओ-रंजे-फ़ुरक़त[५] क्या॥

जिगर— वोह भी है इक मुक़ामे-इश्क़ जहाँ—
हर हर तमन्ना[६] गुनाह[७] होती है॥

असर— मज़ाक़े-इश्क़ हो कामिल तो सूरते-शबनम[८]।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़[९] रहे॥

आरज़ू— दरयूज़ागरे-हिर्स[१०] न बन राहे-तलबमें[११]।
दिल इश्क़से ख़ाली है तो कासा[१२] है गदाका[१३]॥

उम्मीद—अरे सूदो-ज़ियाँ[१४] देखा नहीं जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है*॥

---

[१]स्थायी सुख; [२]अभिलाषा, वासना; [३]तन्मयता; [४]मिलन-सुख; [५]विरह-दुःख; [६]इच्छा; [७]अपराध; [८]ओसकी तरह; [९]फूलपर रहती हुई भी अछूती—अलग—रहती है; [१०]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी; [११]अभिलाषाओके मार्गमे; [१२,१३]भिक्षुकका पात्र; [१४]लाभ-हानि।

*मीर—चाहतका इज़हार[१] किया सो अपना काम ख़राब किया।
इस पर्देके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब[२] हुआ॥

---

[१]इच्छा प्रकट की; [२]लाज, सकोच।

यह निस्वार्थ और पवित्र प्रेम सरल नही, इसमें जीवनभर तपना पडता है—

जिगर— यह इश्क़ नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है॥

आरज़ू— मुहब्बत नहीं आगसे खेलना है।
लगाना पड़ेगा बुझाना पड़ेगा॥*

जब इस प्रेमरूपी आगमे मनुष्य तप लेता है, तभी वह सचमुच इन्सान बन पाता है—

शाद— नहीं रहते रिया-ओ-क़वह फिर भूलेसे भी दिलमें।
मुहब्बत यारकी इन्साँ बना देती है इन्साँको॥†

---

*मीर— क्या जानिए कि छाती जले है कि दागे-दिल।
इक आग-सी लगी है कहीं, कुछ धुआँ-सा है॥
हम तेरे इश्कसे वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन—
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥
आतिशे-इश्क[1] जिसके दिलको लगी।
शमअ-साँ[2] आप ही को खाता है॥
इश्कके दो गवाह ला, यानी—
ज़र्दि-ए-रंगो-चश्मेतर[3] है शर्त॥
चाहतमें[4] दख़ल मत दे ज़िनहार[5] आरज़ूको[6]।
करदे है दिलकी ख़्वाहिश[7] बीमार-रफ़्ता-रफ़्ता॥

†मीर— सज्दा उस आस्ताँका[8] न जिसको हुआ नसीब।
वोह अपने एतक़ादमें[9] इन्सान ही नहीं॥

---

[1]प्रेम-अग्नि; [2]मोमबत्तीकी तरह स्वयको जलाता रहता है; [3]चेहरा पीतवर्ण और नेत्र अश्रुपूर्ण; [4]प्यारमे, इश्कमे, [5]कदापि, [6]अभिलाषाको; [7]इच्छा; [8]प्यारेकी चौखटको प्रणाम करना; [9]हमारी सम्मतिमे।

यही शुद्ध प्रेम 'तू', 'मैं' और अपने-परायेका भेद भी मिटा देता है। सर्वत्र अपने प्यारेका जलवा नजर आता है—

इस्लामो-कुफ़् कुछ नहीं आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तला हूँ मै आप अपने हालमें॥*

प्रेममे कही-न-कही कसर होती है, तभी उपेक्षाका आभास होता है—

राज़ रामपुरी—नियाज़े-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है॥

अगर इश्कमे कही ख़ामी नहीं है, तो फिर बरहमी (उपेक्षा) महसूस होनके क्या मानी? इश्क तो इन्सानको उस बुलन्दीपर पहुँचा देता है कि—

नाज़िश परतापगढ़ी—शिकवा न शिकायत, न तसव्वुर, न ख़यालात।
अल्लाहरे यह मेरी मुहब्बतके मुक़ामात॥†

---

*मीर— दिल साफ़ हो तो जलवागहे-यार क्यों न हो।
आईना हो तो क़ाबिले-दीदार क्यों न हो[1]॥
दिया दिखाई मुझे तो उसीका जलवा 'मीर'।
पड़ी जहानमें जाकर जहाँ नजर मेरी॥
जिस्मे-ख़ाकीका जहाँ पर्दा उठा।
हम हुए वोह 'मीर' सब, वोह हम हुआ॥

†मीर— हमें इश्क़में 'मीर' चुप लग गई है।
न शुक्रो-शिकायत, न हर्फ़ो-हिकायत॥

---

[1]यदि मन-मन्दिर स्वच्छ है तो उसमे प्यारेका निवास क्यो न होगा? मन-दर्पण होगा तो वह दर्शन-योग्य होगा ही।

वह युग समाप्त हुआ, जब इश्कको वबाले-जान समझकर उससे बचनेकी ताकीद की जाती थी—

वसीयत 'मीर' ने मुझको यही की—
"कि सब कुछ होना तू आशिक न होना"॥

अब तो बगैर इश्क इन्सान, इन्सान नहीं बन पाता—

असर— इन्सानको बे इश्क सलीका नहीं आता।
जीना तो बड़ी चीज़ है, मरना नहीं आता॥

राधेनाथ कौल—इश्क जन्नत है आदमीके लिए।
इश्क नेमत है आदमीके लिए॥[1]

प्रेम-विभोर प्रेमीको प्रेमका मार्ग बतानेके लिए पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता नहीं—

दिल— रहनुमाकी[1] क्या ज़रूरत इश्क कामिल[2] चाहिए।
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना वहीं है कूए-दोस्त[3]॥

सच्चा प्रेमी घुट-घुटके मर जायगा, किन्तु कोई भी इच्छा ऐसी व्यक्त नहीं करेगा, जो उसकी प्रेयसीको अरुचिकर हो—

---

[1]पथ-प्रदर्शककी; [2]पूर्ण; [3]प्रेयसीका स्थान।

[1]मीर— क्या हकीकत कहूँ कि क्या है इश्क।
हक-शनासोंका[1] हाँ खुदा है इश्क॥
[2]इश्कसे जा[2] नहीं कोई खाली।
दिलसे ले अर्शतक[3] भरा है इश्क॥

---

[1]इन्साफ-पसन्दोंका, सत्यवादियोंका; [2]स्थान, [3]आकाशतक।

आरज़ू— ऐसी हसरत[1] ही से बाज़ आना है ख़ूब।
जो मुझे मरगूब[2] उनको नापसन्द॥

जिगर—शौक़का मर्सिया न पढ़, इश्क़की बेबसी न देख।
उसकी ख़ुशी, ख़ुशी समझ, अपनी ख़ुशी, ख़ुशी न देख॥

अर्शी— जब उन्हें अर्ज़-अलमपर[3] मुज़तरिब[4] पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके हैं आँसू वोह भी पी जाता हूँ मैं॥

लुत्फ़ी रिज़वाई—नज़र किसीकी नदामतसे[5] क्या झुकी 'लुत्फ़ी'!
कि याद मुझको ख़ुद अपने ही सब क़ुसूर आये॥

यदि प्रेमीके किसी बर्तावसे प्रेयसीके हृदयको ठेस पहुँचे या उसकी आँखोंसे आँसू आ जाये तो यह उसका अपराध क्षमा योग्य नहीं—

जिगर— हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमाँ[6] होना॥

प्रेमी मन ही मनमें घुटता रहता है, परन्तु मनकी बात मुँहपर इस भयसे नहीं लाता कि कहीं उसकी प्रेयसीकी प्रतिष्ठामें बाल न आ जाये—

ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी—आ जाये न उनकी निगहे-मस्तपै इल्ज़ाम।
ऐ दोस्त! न कर तज़किरे-ए-गर्दिशे-ऐयाम[7]॥*

---

[1]इच्छासे; [2]रुचिकर, [3]अपनी व्यथाओंके प्रकट करनेपर; [4]बेचैन, [5]शर्मिन्दगीसे, [6]शर्मिन्दा; [7]मुसीबतोंका वर्णन।

* **मीर—** गिला लबतक न आया 'मीर' हरगिज़।
ख़पा जी ही में ग़म सारा हमारा॥
तुरबतसे आशिक़ोंकी न उट्ठा कभी गुबार।
जीसे गये वले[1] न गई राज़दारियाँ[2]॥

---

[1]लेकिन; [2]भेदकी बातें किसीको न बताईं।

सच्चा प्रेमी 'मोमिन' की तरह अपनी प्रेयसीको बदनाम करनेकी धमकी नही देता है—

मुझसे मिल वरना, रकीबोंसे मैं सब कह दूँगा।
दुश्मनी अबकी तेरी और वह पहला इख़लास॥

बल्कि बदनामीको स्वय ओढकर प्रेयसीकी मान-प्रतिष्ठाको अक्षुण्ण बनाये रखता है—

अर्शी— ज़माना कहता है बरबादे-आरज़ू मुझको।
खुदा करे कोई इलज़ाम उनपै आ न सके॥
इस्मते-कोनीन[1] उस बरबादे-उलफ़तपर[2] निसार[3]।
उनके दामनको बचाकर खुद जो रुसवा[4] हो गया॥

और यदि प्रेमी अपनेमे इतनी सामर्थ्य नही पाता है, तो उसे जीवित रहनेका अधिकार नही—

हसरत—उस शोख़का शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया?
इससे तो ऐ मर्दे-खुदा! बेहतर था मर जाना तेरा॥

शिकवे-शिकायतकी पाकइश्कमे गुजाइश ही नही। वहाँ तो सच्चे आशिककी हालत यह होती है—

फ़ानी— अब लबपै वोह हंगामि-ए-फ़रियाद नहीं है।
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है॥

अर्शी— आपके अहदे-करमका भी तसव्वुर है गराँ[5]।
उन मुकामातपै अब आपका सौदाई[6] है॥

---

[1]ससारकी प्रतिष्ठा; [2]प्रेममे बरबाद हुएपर; [3]न्योछावर; [4]बदनाम; [5]आपकी कृपाओके क्षण भी ध्यानमे नही रहे है; [6]आपका यह दीवाना आशिक इतनी बुलन्दीपर पहुँच गया है।

बाक़ी सद्दीक़ी— यह कैसी बेख़ुदी है लिख गया हूँ।
मैं अपने नामके बदले तेरा नाम॥

मसरूफ़ अलम—उनके तसव्वुरातका[1] अल्लाहरे करम।
तनहा[2] न एक लमहेको रहने दिया मुझे॥

असग़र— होश किसीका भी न रख, जलवागहे-नियाज़में[3]।
बल्कि ख़ुदाको भूल जा सज्दए-बेनियाज़में[4]॥*

ग़ज़लका इश्क जब इतना पाक और बेलौस होता जा रहा है, तब उसके माशूक़ (महबूब, प्यारे) का मर्तबा कितना बुलन्द, महान् एवं गौरवास्पद होना चाहिए? यह जिज्ञासा सहज-मे ही बलवती हो उठती है। आलमे-इश्क़मे महबूब ही सब कुछ है। आशिकके लिए महबूबकी चौखट काबा और उसको बार-बार निहारना ही नमाज है—

महबूबका मर्तबा

शाद— तेरी गलीके क़अ़्दह-क़यामकी[5] क्या बात?
इसीको दिलकी ज़बाँमें नमाज़ कहते हैं॥

---

[1]ध्यानका; [2]अकेला; [3]प्रेम-मन्दिरमे, [4]प्रेमकी तल्लीनतामे; [5]बैठने, रहनेकी।

*मीर— महव कर आपको यूँ हस्तीमें उसकी, जैसे—
बून्द पानीकी नजर आती नहीं पानीमें॥
सदा हम तो खोये-गये-से रहे।
कभू आपमें तुमने पाया हमें?
ज़ौक़े-ख़बरमें हम तो बेहोश हो गये थे।
क्या जाने कब वोह आया, हमको नहीं ख़बर कुछ॥
कुछ होश न था मिम्बरो-महराबका हमको।
सद शुक्र कि मस्जिदमें हुए मस्तीमें वारिद॥

जलील— दैरो-काबेकी ज़ियारत[1] तो फकत हीला[2] है।
जुस्तजू[3] तेरी लिए फिरती है घर-घर मुझको॥

यगाना— मंजिलकी फ़िक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ।
पीछे न फिरके देखूँ, काबा भी हो तो क्या है॥

माहिर— हम भी ज़रूर क़ाबेको चलते पर अब तो शेख़!
किस्मतसे बुतक़देमें ही दीदार हो गया॥

असगर— हम एक बार जल्वये-जानाँना[4] देखते।
फिर काबा देखते न, सनमख़ाना देखते॥

'असगर' तो अपने हबीबकी तलाशमे इतने लीन है कि उसे खोजनेकी धुनमे वे मन्दिरो-मस्जिदोकी ओर भी नही देखते। उन्हे अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमे बाधा समझते है—

दैरो-हरम[5] भी कूचये-जानमें[6] आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

जिन्हे कूचये-महबूब नसीब हो गया है, उनकी किस्मतका क्या कहना? कूचये-जानाँके सामने फिरदौस (जन्नत, स्वर्ग) की भी क्या हकीकत?

---

[1]यात्रा, दर्शन करना, [2]बहाना; [3]तलाश, खोज, [4]प्रेयसीका रूप; [5]मन्दिर-मस्जिद, [6]प्रेयसीके स्थानतक पहुँचनेके मार्गमे।

*मीर— हज़ार मर्त्तबा बेहतर है बादशाहीसे।
अगर नसीब तेरे कूचेकी गदाई हो॥
रहनेकी अपनी जा तो, न दैर है न काबा।
उठिए जो उसके दरसे तो हूजिए किधरके?
देखा करूँ तुझीको, मंजूर है तो यह है।
आँखें न खोलूँ तुझ बिन मक़दूर है तो यह है॥

हसरत मोहानी— वल्लाह तुझे छोड़के ऐ कूचये-जानाँ!
'हसरत'से तो फ़िरदौसमें[1] जाया नहीं जाता॥*

ब्रेनज़ीरशाह— वोह तेरी गलीकी क़यामतें कि लहदसे[2] मुर्दे निकल गये।
वोह मेरी जबीने-नियाज़[3] थी कि वहीं धरी-की-धरी रही॥

महबूबका मर्तबा ख़ुदासे कम नही, बक़ौल किसीके—

दावरके[4] सामने बुते-क़ाफ़िरको क्या कहूँ?
दोनोंकी शक्ल एक है, किसको ख़ुदा कहूँ॥

और 'बहजाद' लखनवी तो महबूबको ही खुदा समझते हैं—

---

[1]जन्नतमे; [2]कब्रसे; [3]नतमस्तक; [4]ख़ुदाके।

*मीर— फ़िरदौसको[1] भी आँख उठा देखते नहीं।
किस दरजा सैरे-चश्म[2] हैं कूए-बुताँसे हम?
जन्नतकी मिन्नत उनके दमाग़ोंसे कब उठें?
ख़ाके-रह[3] उसको, जिसके कफ़नका अबीर हो॥
फ़रो[4] न आये सर उसका तवाफ़े-काबासे[5]।
नसीब जिसको तेरे दरकी जिबहसाई[6] हो॥
किसको कहते हैं, नहीं मैं जानता इस्लामो-कुफ़्र।
दैर हो या काबा, मतलब मुझको तेरे दरसे है॥

बैठने दे है कौन फिर उसको?
जो तेरे आस्ताँसे उठता है॥
यूँ उठे उस गलीसे हम—
जैसे कोई जहाँसे उठता है॥

---

[1]जन्नतको; [2]तृप्त; [3]मार्ग-रज; [4]नीचे; [5]काबेकी प्रदक्षिणासे; [6]मस्तक रगड़ना।

आ मेरी कायनाते-दिल[1]! मेरी बहारे-जिन्दगी !
आ कि मैं यह न कह सकूँ "मुझको खुदा न मिल सका" ॥

अपने प्यारेके ध्यानमे दिन-रात लीन रहना ही प्रेम-धर्म है—

हसरत मोहानी—शब वही शब[2] है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाये॥

आसी— जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[3] ऐसी सुहबत क्या ?*

अपने प्यारेके चिन्तन और स्मरणके अतिरिक्त प्रेमीको अन्य कुछ भी नही सुहाता—

हसरत— हम क्या करें अगर न तेरी आरज़ू करें !
दुनियामें और कोई भी तेरे सिवा है क्या ?

---

[1]दिलकी दुनिया; [2]रात; [3]इष्ट-मित्र।

*मीर—गई तसबीह[1] उसकी नज़अमें[2] कब 'मीर'के दिलसे ?
उसीके नामकी सुमरन थी, जब मनका ढलकता था॥
हर सुबह उठके तुझसे माँगू हूँ मैं तुझीको।
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है॥
रहते हो तुम आँखोंमें, फिरते हो तुम्हीं दिलमें।
मुद्दतसे अगर्चे याँ, आते हो न जाते हो॥
हमनशीं[3] ! क्या कहूँ, उस रश्के-महे-तावाँ[4] बिन।
सुबहे-ईद अपनी है बदतर, शबे-मातमसे[5] भी॥

---

[1]माला, सुमरन; [2]प्राणान्त समयमे; [3]पडौसी; [4]जिसके सौन्दर्यपर चन्द्रमाको भी ईर्ष्या हो; [5]शोक-रात्रिसे।

जलील— मुझे तमाम जमानेकी आरज़ू क्यों हो?
बहुत है मेरे लिए एक आरज़ू तेरी॥

फ़ानी— एक आलमको देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[1] क्या॥

जिगर मुरादाबादी—
यूँ जिन्दगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर।
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं॥

जिगर बरेलवी—तुम नहीं पास कोई पास नहीं।
अब मुझे जिन्दगीकी आस नहीं॥

दिल— नजरका इक इशारा चाहिए अहले-मुहब्बतको।
जबीने-शौक़ झुक जाये जिधर कहिए, जहाँ कहिए॥

महबूबका जमाल

प्रेयसीके रूप, हाव-भाव (जमाल) का वर्णन करना बहुत ही नाजुक एव कोमल कला है। तनिक-सी असावधानीसे अश्लीलताके धब्बे उभर आते है। ऐसा कौन विवेक-हीन कलाकार होगा, जो अपनी प्रियतमाके गुप्तागोका चित्रण करे। लेकिन गजलगो शाइर ऐसा करते रहे हैं। पिछले वक्तोंके बाज़-बाज शाइरोने तो अपनी कामुक मनोवृत्तिका बहुत ही कुरुचिपूर्ण परिचय दिया है। कई स्थलोपर तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होने अपनी प्रियतमाको नग्न करके चौराहेपर खडा कर दिया है—

निज़ाम रामपुरी— वोह जानुओंमे सीना छुपाना सिमटके हाय!
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा, छुड़ाके हाथ॥

---

[1] पूर्णरूपेण।

दाग़— हर अदा मस्ताना सरसे पाँवतक छाई हुई।
उफ तेरी काफिर जवानी, जोशपर आई हुई॥

अब जमाना बदल गया है। वर्त्तमान युगमे प्रियतमाको जो उच्चासन प्राप्त है, उसीके अनुरूप उसके सौन्दर्यका उल्लेख हुआ है।

रियाज़— लें वोह दामनमें क्या गुलावके फूल।
बारे-दामन[1] जिन्हें गुलावका रंग॥

रंगका उसके पूछना क्या है।
जिसका साया भी दे गुलावका रंग॥

नाज़ुक कलाइयोंमें हिनाबस्ता मुट्ठियाँ[2]।
शाखोंपै जैसे मुँह बँधी कलियाँ गुलावकी॥

असर— अब मैं समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुज़र जायें॥
फूल डूबा हुआ गुलाबमें था।
उफ़! वोह चेहरा हिजाबआलूदा[3]॥
दर्मे-ख़्वाब[4] है दस्ते-नाज़ुक[5] जबींपर[6]।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

जिगर मुरादाबादी—तूँ जहाँ नाज़से क़दम रख दे।
वोह ज़मीं आसमान है प्यारे॥

जलील— निगाह बर्क़[7] नहीं, चेहरा आफताब[8] नहीं।
वोह आदमी है मगर, देखनेकी ताब नहीं॥

---

[1]दामनका बोझ, [2]मेहदी लगी हुई मुट्ठियाँ, [3]शर्मसे भीगा हुआ; [4]सोते हुए, [5]कोमल हाथ, [6]मस्तकपर; [7]बिजली; [8]सूर्य।

दिल— सरे-तूर एक बर्क़े-हुस्न लहराती नजर आई।
ज़रा शोख़ीसे झटका था, किसीने अपने दामाँको॥

ऐ हुस्न! जो सज़ाये-तमन्ना हो, वह क़बूल।
लेकिन तेरी नज़रको फिर इक बार देखकर॥

ईमानकी बात तो यह है कि उसके रूपका वर्णन हो ही नही सकता। बक़ौल 'असगर' गोण्डवी—

अगर ख़मोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद[1]॥

अब चन्द जमालयाती शेर खुदा-ए-सुख़न 'मीर'के तवर्रुकन (प्रसाद-स्वरूप) सुनिए—

नज़र उठती नही कि जब ख़ूबाँ[2]।
सोतेसे उठके आँख मलते हैं॥

यूँ अर्क़[3] जलवागर[4] है उस रुख़पर[5]।
जिस तरह ओस फूलपर देखो॥

नाज़ुकी उसके लबकी क्या कहिए।
पंखुड़ी इक गुलाबकी-सी है॥

'मीर' उन नीमबाज़[6] आँखोंमें।
सारी मस्ती शराबकी-सी है॥

पहुँचे है कोई उस तने-नाज़ुकके लुत्फ़को।
गो गुल चमनमें जामेसे अपने निकल पड़ा॥

---

[1]सीमित; [2]हसीन, [3]पसीना; [4]उजागर; [5]कपोलपर; [6]अधखुली।

शब[1] नहाता था जो वोह रश्के-क़मर[2] पानीमें।
गुथी महतावसे[3] उठती थी लहर पानीमें॥
साथ उस हुस्नके देता था दिखाई वोह बदन।
जैसे झमके है पड़ा गोहरे-तर[4] पानीमें॥

यह चाँदके-से टुकडे छुपते नही छुपाये।
हरचन्द अपने मुँहको बुर्क़में तुम छुपाओ॥

यूसुफसे कोई क्योंकर उस माहको[5] मिला दे?
है फ़र्क़ रात-दिनका अज़दीदा-ता-शुनीदा[6]॥

आँखोंमें ही रहे हो, दिलसे नहीं गये हो।
हैरान हूँ यह शोख़ी आई तुम्हे कहाँसे?

शम्सो-कमरके[7] देखे जी उसमें जा रहे हैं।
उस दिल-फरोजके भी रुख़सार ऐसे ही थे॥

गुल भी है महबूब लेकिन कब है उस महबूब-सा।
आगे उस क़दके है सरो-बाग़ बेउसूल बसा॥

रश्के-ख़ूबीका[8] उसीके, जिगरे-महमें[9] है दाग़।
वोह जो एक ख़ाल[10] पड़ा है तेरे रुख़सारके[11] बीच॥

देख उसे हो, मलिकसे[12] भी लग़जिश।
हम तो दिलको सम्भाल लेते हैं॥

---

[1]रातको; [2]सौन्दर्य्यमे जिससे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे, [3]चन्द्रमासे; [4]मोती; [5]चन्द्रमुखीको; [6]देखने और सुननेमे; [7]सूर्य-चन्द्रमाके; [8]सौन्दर्यकी ईर्ष्याके कारण, [9]चन्द्रमामे कालिमाका; [10]तिल; [11]कपोलके; [12]देवतासे।

लुत्फ़ कहाँ, वोह बात कहेपर, फूलसे झड़ने लग जावें।
सुर्ख़ कली भी गुलकी अगर्चे यारके लाले-लब-सी है॥

जी ही मला जाता है अपना 'मीर' समाँ यह देखेसे।
आँखें मलते उठते हैं, बिस्तरसे दिलबर जब सोकर॥

देखी थी एक रोज़ तेरी मस्त अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयाँ ही लेते हैं अब तक खुमारमें॥

खिलना कम-कम कलीने सीखा है।
उसकी आँखोंकी नीमख़्वाबीसे[1]॥

रोना-बिसूरना

पिछले ज़मानेमे जब इश्क जी का रोग समझा जाता था, तब इश्कका रोगी शबे-हिज्रमे रोता-बिसूरता था, आहो-नाले करता था और अपने रजोगमकी दास्तान बड़-बड़ाता रहता था। बकौल मीर—

कभू 'मीर' उस तरफ़ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद[2] है, अपना तो कलेजा टूट जाता है॥

रोते फिरते हैं सारी-सारी रात।
अब यही रोज़गार है अपना॥

वर्तमानमे इश्क इन्सानके लिए जरूरी चीज बन गया है। रोने-धोनेसे दामने-इश्कमे धब्बा लगता है—

जिगर मुरादाबादी—इश्ककी अज़मत[3] न हरगिज जीते जी कम कीजिए।
जान दे दीजे मगर आँखें न पुरनम[4] कीजिए॥

---

[1]अधखुली; [2]साक्षी; [3]प्रतिष्ठा, महानता; [4]अश्रुपूर्ण।

दिल— मुहब्बत बेअसर उसकी, मुहब्बत रायगाँ[1] उसकी।
कि जिसने उम्रभर पूँछे हैं आँसू अपने दामाँसे॥

रंजो-गममें रोने-धोनेके क्या मानी? मर्द वह है जो इनका हँसते हुए स्वागत करता है। चन्द नमूने मुलाहिज़ा फर्मायें—

साकिब— जवाब ज़ख्मे-जिगर दे रहा है हँस-हँसकर।
"वही तो दिल है कि जो खुश रहे मुसीबतमें"॥

रियाज़— असर बढ़ जाय या रब! इस कदर सोज़े-मुहब्बतमें।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझूँ फूल जन्नतका॥

असर— गम नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे असीरी[2] लुत्फ़े-आजादी नहीं॥

फानी— जिन्दगी यादे-दोस्त है, यानी—
जिन्दगी है तो गममें गुज़रेगी॥

मौजोंकी सयासतसे[3] मायूस[4] न हो 'फानी'।
गिरदाबकी[5] हर तहमें साहिल[6] नज़र आता है॥

रस्मे-बेदाद-दोस्त[7] आम हुई।
तल्ख़ये-जीस्त[8] भी हराम हुई॥

यगाना चंगेज़ी— जीस्तके हैं यही मज़े वल्लाह।
चार दिन-शाद[9] चार दिन नाशाद॥

---

[1]व्यर्थ; [2]बन्धनके दुःख देखे बिना; [3]लहरोके बढनेसे, वेगसे; [4]निराश; [5]भँवरकी; [6]तट, किनारा; [7]प्रियतमाके अत्याचार करनेकी प्रथा; [8]जिन्दगीकी कड़वाहट, [9]खुश।

शाद— अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो।
मौतकी कैद लगा दी है ग़नीमत समझो॥

पुकारकर वहशियोंसे कह दो, "खिज़ाँका भी दौर है गनीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो ले अगर न मौका मिले रफ़ूका"॥

आज़ाद अन्सारी—ग़ैर फ़ानी खुशी[1] अता करदी।
ऐ ग़मे-दोस्त[2] ! तेरी उम्र दराज़[3]॥

फ़ानी— तूने करम[4] किया तो ब-उनवाने-रंजे-ज़ीस्त[5] !
गम भी मुझे दिया तो ग़मे-जाविदाँ[6] न था॥
गम भी गुज़श्तनी[7] है, खुशी भी गुज़श्तनी।
कर ग़मको अख्तियार कि गुज़रे तो ग़म न हो॥
मेरी हविसको[8] ऐशे-दो आलम[9] भी था क़बूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुःखा हुआ॥

आरज़ू— एक दिलमें ग़म ज़माने भरका क्योंकर भर दिया ?
खू-ए-हमदर्दीने[10] कूजेमें समन्दर[11] भर दिया॥

दिल— ए दिले-नाकाम रफ़-ए-ग़मकी[12] सूरत है यही।
वाक़ियाते-ज़िन्दगीको[13] भूल जाना चाहिए॥

अर्शी— जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥

मुहम्मद 'असर'—हज़ार ऐशकी सुबहें निसार है जिसपर।
मेरी हयातमें[14] ऐसी भी इक शबे-गम[15] है॥

---

[1]अमिट प्रसन्नता; [2]प्रियतमाके दुःख, [3]लम्बी; [4]कृपा; [5]जीवनके दुःखो रूपी शीर्षक; [6]स्थायी दुःख; [7]नष्ट होनेवाला; [8]तृष्णा, लालसाको; [9]दोनो जहानके भोग-विलास; [10]विश्व-समवेदनाकी आदतने; [11]गागरमे सागर; [12]गम नष्ट करनेका उपाय; [13]जीवन-घटनाको; [14]जीवनमे; [15]दुःखकी रात।

ख़िज़ाँ प्रेमी— ग़म एक इम्तहान था इन्सानके लिए।
जो लोग अहले-ज़ौक़[१] थे, वोह मुसकरा दिए॥

दर्द सईदी—

यह क्यों फ़िज़ापर[२] है यासतारी,[३] यह हर तरफ क्यों उदासियाँ है?
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

नाज़िश परतापगढ़ी—

वोह तो ख़ैरियत गुज़री जो ग़मने गोद फैला दी।
वर्ना हज़रते-'नाज़िश' कौन आपका होता?
यह लुटा-लुटा-सा आलम, यह उड़ी-उड़ी-सी रंगत।
कहीं छिन न जाय मुझसे मेरे ग़मकी ताज़गी भी॥
मेरे दर्दमें निहाँ[४] है, वोह निशाते-जाँविदानी[५]।
कि निचोड़ दूँ जो आहें तो टपक पड़ें तबस्सुम[६]॥

राज़ रामपुरी—

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, जिन्दगीका मातम है॥

हुरमतुल इकराम—

मुझसे हर बार मसर्रतने[७] छुड़ाया दामन।
मुझको सौ बार दिया ग़मने सहारा ऐ दोस्त!

अज्ञात—

किसको होती है अ़ता[८] इस शानकी बरबादियाँ।
आशियाँ हम क्या बनाते, बिजलियाँ देखा किये॥

---

[१]पारखी; [२]वायुमण्डलमे; [३]निराशा छाई है; [४]छुपी हुई; [५]स्थायी सुख; [६]मुसकान; [७]ख़ुशीने; [८]प्रदान।

पिछले जमानेके अक्सर शाइरोंने जहाँ माशूकको कातिल एव बेवफ़ा[1] चित्रण किया है; वहाँ आशिकको भी बहुत ज्यादा जलीलो-ख्वार किया है।[2] यहाँतक कि आशिको-माशूक शब्द इतने घृणित और उपहासास्पद हो गये हैं कि यह भनक पड़ते ही कि अमुक युवक-युवतीका परस्पर इश्क़ है तो भद्र समाजमे उनपर उँगलियाँ उठने लगती है, चेमेगोइयाँ होने लगती है; और उन्हे आवारा, उच्छृंखल एवं चरित्रहीन समझ लिया जाता है। यहाँतक कि कुटुम्बी जन उनके अस्तित्वको अभिशाप समझने लगते हैं।

आशिक़-ओ-माशूक़की तसवीर

अब जब कि हुस्नो-इश्कका मर्त्तबा बहुत बुलन्द तसव्वुर किया जाने लगा है तो आशिक़ो-माशूककी तसवीरे भी उसी मेयारपर बनाई जा रही है। पिछले जमानेके माशूक विरह-व्यथासे पीड़ित अपने आशिककी

---

[1]दाग़— अपने बिस्मिलका सर है ज़ानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं॥

मोमिन— दरबाँको आने देनेपै मेरे न कीजे क़त्ल।
वर्ना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था॥

[2]ग़ालिब— दे वोह जिस क़दर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे-आश्ना निकला उनका पासबाँ अपना॥

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब।
याद थीं जितनी दुआएँ सर्फ़ दरबाँ हो गईं॥

दाग़— देखते ही मुझे महफ़िलमें उन्हें ताब कहाँ?
खुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर"॥

अज्ञात— कल जो उठते थे बिठानेके लिए।
आज बैठे है उठानेके लिए॥

परिचर्य्या करना तो दरकिनार उनकी मिज़ाज पुर्सीको आना भी शायाने-शान नही समझते थे।

तसलीम— गर उन्हें है ख़ौफ अर्ज़े-आरज़ू।
दूरसे आकर तमाशा देख लें।।

लेकिन इश्क़ अगर सादिक है तो नामुमकिन है कि माशूकको उस चाहतका पता न लगे और आशिकके रजो-गममे उसकी आँखे न डबडबा आये—

साक़िब— नज़अ[1] इक ईद है, वोह रोते हुए आये है।
ऐ दिले-ज़ार! यही वक़्त है मर जानेका।।

अर्शी— अब देखिए पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ?
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये है आज।।

अज्ञात— तेरी आँखोंसे यह आँसूका ढलकना तौबा!
मैंने गिरती हुई कौनैनकी[2] क़िस्मत देखी।।

वर्त्तमान युगीन शाइर जहाँ सुशीला, सहृदया और नेक प्रेयसीका चित्रण कर रहे है; वहाँ प्रेमीके बेलौस प्रेम और स्वाभिमानी व्यक्तित्वका भी नक़्शा उभार रहे है। यह माना कि प्रियतमा ही काबा-ओ-काशी है। उसकी यादमे लीन रहना ही नमाजो-उपासना है। मगर प्रेमी भी तो आखिर मनुष्य है। वह प्रियतमाकी चाहतमे मर मिटेगा, जीवनभर सुलगता रहेगा; किन्तु जानबूझकर की गई उपेक्षा या तौहीनको वह नही सह सकेगा। वह मनुष्य है और मनुष्यताका अपमान सहन करना मनुष्यता नही, पशुता है। इस हीन स्थितिमे वह किसी भी कीमतमे रहनेको प्रस्तुत नही।

---

[1]मृत्यु-पल, [2]ससारकी।

आनन्दनारायण मुल्ला—

तूने फेरी लाख नरमीसे नजर।
दिलके आईनेमें बाल आ ही गया॥*
किसीके पाँवका रौंदा हुआ नहीं 'मुल्ला'।
वोह है तो गर्द, मगर राहे-कारवाँमें नहीं॥

शाद अज़ीमाबादी—

दिले-मुज़तरिब! तुझे क्या कहूँ, अबस उनके पाँवपै सर रखा।
जो ख़फ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह आदमी थे, ख़ुदा न थे॥†

जिगर— हमसे नजर फेर ली उस शोख़ने।
हम भी है इन्सान ख़फ़ा हो गये॥‡

फ़ानी— रस्मे-ख़ुद्दारीसे गो वाक़िफ़ न थी दुनियाए-इश्क़।
फिर भी अपना ज़ख़्मे-दिल शरमिन्द-ए-मरहम न था॥

आरज़ू— उनकी बेजा भी सुनूँ आप बजा भी न कहूँ।
आख़िर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नहीं॥

---

*मीर— याँ अपने जिस्मे-ज़ारपै तलवार-सी लगी।
उसने जो बेदमाग़ीसे अबरूको ख़म किया॥

†मीर— ख़ाक ऐसी आशिक़ीपर ठुकराये भी गये कल।
पाँवों फने-से उसके पर 'मीरजी' न सरके॥

‡मीर— बाहम सलूक था तो उठाते थे नर्म-गर्म।
काहेको 'मीर' कोई दबे जब बिगड़ गई॥
ख़ाना ख़राब 'मीर' भी कितना ग़यूर था?
मरते मुआ पर उसके कभू घर न जा फिरा॥

यगाना— बन्दगीका सबूत दूँ क्योंकर ?
इससे बेहतर है कीजिए इनकार ॥

जब स्वाभिमानका यह आलम है कि वन्दगीका सबूत चाहे जानेपर वन्दगीसे भी इनकार कर दिया जाता है। तब उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व किसीका भी एहसान कैसे उठाये और क्यो किसीसे याचना करे ?

साक़िब— पेशे-अरबाबे-करम[1] हाथ वोह क्या फैलाता ?
जिसको तिनकेका भी एहसान गवारा न हुआ ॥*

नियाज़— हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजूसे हम ॥

असर— रहमपर ग़ैरके जीना कैसा ?
जिन्दगीका यह क़रीना कैसा ?

आरज़ू— दरे-दिल[2] 'आरज़ू' ! दरवाज़-ए-काबेसे बेहतर था।
यह ओ ग़फ़लतके मारे ! तूने पेशानी कहाँ रख दी ?
धूप सह लेना अच्छा, बारे-एहसाँ[3] कौन उठाय।
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए ॥
माँग जो खोके आन-बान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[4] न माँग ॥
आलूदगी-ए-गर्दे-तमासे[5] ख़ुदा बचाय।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम ॥

---

*मीर— आगे किसीके क्या करें दस्ते-तमअ़[1] दराज़।
यह हाथ सो गया है सिराहने धरे-धरे ॥

[1]इष्ट-मित्रोके सामने; [2]हृदय-द्वार; [3]एहसानका बोझ; [4]जीवन-रक्षा; [5]अभिलाषा-रूपी धूलकी लिप्सासे।

---

[1]अभिलाषाका हाथ।

यगाना— आँखे नीची हुई अरे यह क्या ?
क्यों ग़रज़ दरमियानमें आई ?
बन्दा वोह जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥

अदीब मालीगाँवी—

अपना अदाशनास बन, अपना जमाल भी तो देख।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमें कमी कोई नहीं॥

कौसर क़ुरैशी—मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंमें गुजर जाना।
मैं इन्साँ हूँ, मेरी तौहीन है, घुट-घुटके मर जाना॥

अपने प्यारेका विरह नारकीय यन्त्रणासे भी अधिक दुःखद होता है। हर प्रेमीकी अभिलाषा रहती है कि वह अपने प्यारेके पास निरन्तर बैठा रहे, एक क्षणको भी पृथक् न रहे; परन्तु विधिका विधान ही कुछ ऐसा है कि वियोग ही जीवनभर सहना पड़ता है, मिलन यदि होता भी है तो क्षणिक होता है। पिछले शाइरोंमें बहुतोंने विरहपर बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण कहा है जिसे सुनकर सहानुभूति उदित होनेके बजाय खीज-सी होती है। कोई विरह-व्यथा सहते-सहते इतने दुर्बल हो गये हैं कि बकौल किसीके—

हिज्रे-यार

बिस्तरपै ढूँडती फिरी शबभर क़ज़ा मुझे

कोई विरह-ज्वालामें इतने तप रहे हैं कि बकौल 'अमीर' मीनाई—

फूल गर मुरझाये तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ले सबा चलनेको मैं, चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

कोई विरह-व्यथामें ऐसे खोये गये हैं कि जड़-मूर्त्ति समझकर परिन्दोंने उनके सरपर घोंसले बना लिये हैं। बकौल आरिफ—

जानकर मजनूँ मुझे एक लैलि-ए-गुलफ़ामका।
आके बुलबुलने बनाया आशियाँ बालाए-सर॥

अब आधुनिक युगके चन्द स्वाभाविक शेर विरहपर दिये जा रहे हैं—

अर्शी—बेताबिये-दिलके उन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अह्‌दे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये॥

असर—　फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥
याद करले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई॥

जलील—　तुम जो याद आये तो सारी कायनात[1]।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥
कासिद! पयामे-शौकको देना न बहुत तूल।
कहना फ़क़त यह उनसे कि "आँखें तरस गईं"॥

'शाद' अज़ीमाबादी—
शबे-हिज्राँकी सख़्ती हो तो हो, लेकिन यह क्या कम है।
कि लबपै रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

हसरत—　कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़।
कहीं क़ुबूल न हो जाय इल्तजा[2] मेरी॥

नसरीं—　वाह क्या कैफ़े-तसव्वुर[3] है कि अक्सर हिज्रमें।
यूँ हुआ महसूस गोया वोह अचानक आ गये॥

---

[1]दुनिया,　[2]इच्छा, प्रार्थना;　[3]ध्यानावस्था।

अज्ञात— रुख़सतके वाक़ियातका इतना तो होश है।
देखा किये हम उनको जहाँतक नजर गई॥

दरतक तो आ चुके थे, मगर आके फिर गये।
ऐ जब्ते-दिल! असरमें कहाँपर कमी रही॥

अदीब मालीगाँवी—
उस जाने-बहाराँने[1] जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे।
शाख़ोंने लचकना छोड़ दिया, गुंचे भी चटख़ना भूल गये॥

एक खातून— बे तुम्हारे मैं जी गई अबतक।
तुमको क्या ख़ुद मुझे यक़ीन नहीं॥*

अर्शी— तेरी नीची नजरकी यादका आलम अरे तौबा!
चुभोकर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको[2]॥
आग़ाजे-आशिक़ीका[3] अल्लाहरे जमाना।
हर बात बहकी-बहकी हरगाम वालहाना॥

पुरानी गजलोंमें निराशा एवं असफलता (यास-ओ-हिरमान) की बहुत अधिक भरमार है। वे शाइर भी जो जीवन पर्यन्त ऐश करते रहे; ता-उम्र निराशाके गीत गाते रहे हैं।

यास-ओ-हिरमान

अक्सर पुराने शाइरोंने जीवनके बजाय मृत्यु चाही†। प्राय सभीने पुरुषार्थके बदले अकर्मण्यताको अहमियत

---

[1]बहाररूपी प्रियतमाने; [2]तीरको; [3]प्रेमासक्तिका प्रारम्भ।

*मीर— इश्क़में वस्लो-जुदाईसे नहीं कुछ गुफ़्तगू।
क़र्बो-बाद[1] उस जा बराबर है, मुहब्बत चाहिए॥

†ग़ालिब— मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी।
मौत आती है, पर नहीं आती॥

---

[1]नजदीकी-दूरी।

दी†। लेकिन अब करो या मरोका युग है। अकर्मण्योको सावधान करते हुए 'यगाना' चगेजी फर्माते है—

ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥

जो हाथ-पाँव नही हिलाता, उसके मुँहमे ग्रास देने ईश्वर भी नही आता। जो पुरुषार्थ करते है, उन्हे सहायक मिल ही जाते है। इसी भावको 'यगाना' चगेज़ी यूँ व्यक्त करते है—

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म, दामनसे पहिले आस्तीं होती॥

जो व्यक्ति असफलताओसे निराश हो बैठते है, उनके लिए यह अशआर देखिए कितने प्रेरणादायक है—

शाद अज़ीमाबादी—

यह मुमकिन है कि लिक्खी हो क़लमने फतह आख़िरमें।
जो है अहबाबे-हिम्मत ग़म नहीं करते शिकस्तोंमें॥

दत्तात्रिय कैफ़ी—हाँ-हाँ मगर ऐ दोस्त! तू तद्‌बीर किये जा।
यह भी तेरी तकदीरके दफ़्तरमें लिखा है॥

जो स्वय नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादी देखिए किस ख़ूबीसे रिन्दाना अन्दाजमे पेश करते है—

समझता है इस दौरमें कौन किसको?
करें रिन्द ख़ुद एहतराम[1] अपना-अपना॥

---

†आतश—किस्मतमें जो लिखा है, वोह आयेगा आपसे।
फैलाइए न हाथ न दामन पसारिए॥

[1]आदर-सत्कार।

जो कौमे स्वय अपनी प्रतिष्ठाएँ बढानेका प्रयत्न नहीं करती, उनकी आजतक किसी दूसरी कौमने इज्ज़त नही की। 'शाद' अजीमाबादीने कितना तथ्यपूर्ण भेद बतलाया है—

यह बज़्मे-मै[1] है यॉं कोताहदस्तीमें है महरूमी[2]।
जो बढ़कर ख़ुद उठा ले हाथमें मीना उसीका है॥

समय रहते जो कर लिया सो ही थोड़ा—

क्या ग़लत जोम है, बाद अपने किसे ग़म अपना।
हाथ क़ाबूमें है कर ले अभी मातम अपना॥

यह हमारी कम हिम्मती अथवा अकर्मण्यता है जो हम इस शोचनीय स्थितिमे है। अन्यथा बकौल 'शाद' अजीमाबादी—

हिम्मते-कोताहसे[3] दिल, तंगे-जिन्दॉं[4] बन गया।
वर्ना था घरसे सिवा, इस घरका हर गोशा[5] वसीअ्[6]॥

सफ़ी लखनवी—इन्सान मुसीबतमें हिम्मत न अगर हारे।
आसाँसे वोह आसाँ है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक़्क़ी है इस राजसे[7] वाबस्ता[8]।
इन्सानके क़ब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥

असर लखनवी—कौन कहता है कि मौत अंजाम[9] होना चाहिए।
जिन्दगीका जिन्दगी पैग़ाम होना चाहिए॥

नज़ीर बनारसी—खा-खाके शिकस्त फ़तह पाना सीखो।
गिरदाबमें[10] क़ह-क़हा लगाना सीखो॥

---

[1]मधुशाला; [2]पीछे हाथ रखनेसे वचित रह जाओगे; [3]कम-हिम्मतीकी वजहसे दिल, [4]सकीर्ण बन्दीगृह; [5]कोना; [6]विस्तृत; [7]भेदसे; [8]सम्बन्धित; [9]परिणाम; [10]भँवरमे।

शाद अज़ीमाबादी— नज़र आये न आये कोई आँसू पूछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देंगे ॥

आनन्दनारायण मुल्ला—कबतक किसीसे माँगकर हम अख्तियार लें ?
अब जीमें है कि शेरसे लड़कर कछार लें ॥

पुरानी शाइरीमे रकीबो[1] (अदूओ) की बहुत भरमार रही है। अक्सर यही माशूककी नज़रे-इनायतके हकदार होते थे। माशूक इन्हे महफिलोमे अपने नजदीक बिठाते थे। सबके सामने प्यार-ओ-मुहब्बतका इजहार करते थे और अपने हकीकी चाहनेवाले आशिककी तरफ रुख भी नही करते थे। उन्हे महफिलमे बुलाना तो दरकिनार अपने कूचेमे भी नही फटकने देते थे। और मसलहतन कभी महफिलमे बैठने भी दिया तो उनके सामने ही रकीबसे इजहारे-उल्फत करते थे और बेचारे आशिक उनकी इन हरकतोको देख-देखकर कुढते थे। इसी कुढन, गैरत, जलन, ईर्ष्या, स्पर्द्धा आदिको 'रकाबत' कहते है।

रक़ाबत

वर्त्तमान युगमे रकाबतकी वह लानत खत्म होती जा रही है। क्योकि जब माशूका पाकदामाँ और बावफा होती जा रही है, तब रकीबो-अदूका खयालो-ख्वाब भी नही आ सकता।

पृ० १२६ मे यह उल्लेख हुआ है कि उर्दू-शाइरीमे बाजारी माशूकका तसव्वुर फारसी शाइरीके अन्ध-अनुकरणकी वजहसे भी आया। यदि उर्दू-शाइरोने फारसीके बजाय अरबीका अनुसरण किया होता तो बुलहविस आशिको एव हरजाई माशूकोसे उर्दू-शाइरीका दामन बेदाग रहा होता।

मिर्जा गालिब फारसीका अनुसरण करते हुए फर्माते है—

---

[1] माशूकका दूसरा चाहनेवाला, जिसे माशूक भी प्यार करे, उसे रकीब, अदू, गैर, मुद्दई, दुश्मन आदि कहा जाता है।

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र, 'ग़ालिब'!
वोह काफ़िर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे[1]॥

इस शेरमे साफ-साफ हरजाई माशूकका जिक्र हुआ है। 'मीर' अरबी-नस्ल था। अब देखिए उसके यहाँ यही मजमून कितने पाकीज़ा सलीकेसे नज्म हुआ है—

इश्क़ उनको है, जो यारको अपने दमे-रफ़्तन।
करते नहीं ग़ैरतसे ख़ुदाके भी हवाले[2]॥

'मीर'की प्रेयसी पवित्र एव सती है, किन्तु वह इतनी अनुपम, लावण्यवती और यकताँ है कि किसीपर भी विश्वास नही किया जा सकता। उसे देखकर सभव है ख़ुदाकी नीयत भी ऐन-गैन हो जाय।

'मीर'का कमाल यह है कि वह अपनी प्रेयसीको शकित दृष्टिसे नही देखते। मगर उनकी हिन्दुस्तानी गैरत इजाज़त नही देती कि उनके सिवा कोई दूसरा उसे मुहब्बतकी नजरसे देखे। चाहे वह ख़ुदा ही क्यों न हो। उन्हे अपने माशूककी पाकदामनीपर पूरा एतमाद है। मगर दूसरोकी नीयतपर यकीन नही। वे उस पाश्चात्य सभ्यताके क़ायल नही, जो अपनी पत्नियोको दूसरोके साथ नाचते-हँसते-खेलते देखकर खुश होते है। अपनी प्रेयसीपर 'मीर' किसीकी भी कुदृष्टि नही पडने देना चाहते। उनके सिवा कोई और भी उनकी प्रेयसीको चाहतकी दृष्टिसे देखने लगे, यह बेगैरती वे बरदाश्त करनेको तैयार नही।

---

[1] ऐ गालिब! मेरे लिए तो आज प्रलयका दिन है। मेरे जैसा शकित हृदय अपनी जिस प्रेयसीको ख़ुदाके हवाले करते हुए भी झिझकता, वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीके साथ भ्रमणको निकली हैं।

[2] पवित्र और स्थायी प्रेम उन्हीका है जो स्वाभिमानवश अपनी प्रेयसीको ख़ुदाके सरक्षणमे भी रखनेको प्रस्तुत नही होते। रकीबका तो जिक्र ही क्या?

हम देखें तो देखें उसे, फिर पर्दा बेहतर है यानी—
और करें नज्जारा उसका, हमको यह मजूर नहीं ॥

यहाँतक कि 'मीर' अपनी प्रेयसीको पत्र भी नही लिखते। क्योंकि वे जानते है कि पत्र-वाहककी नीयत भी फिसल सकती है—

खत लिखके उसको सादा न कोई मलूल हो।
हम तो हों बदगुमान जो क़ासिद रसूल हो॥

रकाबतपर 'मोमिन'का यह शेर मशहूर है—

उस नक़्शे-पाके सज्देने क्या-क्या किया जलील।
मै कूच-ए-रक़ीबमें भी सरके बल गया'॥

'मोमिन'के यह बहुत बहतरीन शेरोमे-से एक है। इसी मजमूनको 'गालिब'ने यूँ जाहिर किया है—

जाना पड़ा रकीबके दरपर हजार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुजरको मै॥

'गालिब' कूचये-रकीबमे अपने माशूकके नक़्शे-पाका सज्दा करते हुए नही जाते है। वे तो महज बदगुमानी और रकाबतकी वजहसे कूचये-

---

'प्रेयसी प्रतिद्वन्द्वीके घर थी। अतः उसके चरणचिह्नोको सज्दा करते हुए मुझे प्रतिद्वन्द्वीके घरतक जाना पडा। प्रेयसीके चरण-चिह्नोको सज्दा देना प्रेम-धर्म है। इससे तो मुझे प्रसन्नता हुई, परन्तु मलाल तो इस बातका है कि मुझे सज्दा करते हुए शत्रुके दर्वाजेतक जाना पडा, जो मेरी गैरतको गवारा नही था। जिल्लतका सबब यह हुआ कि रकीबके कूचेमे सरके बल जानेसे लोग समझे कि रकीबसे रहमका ख्वाहिशमन्द है और उसके कूचेमे नाक रगडता है।

रक़ीबमे जाते है। ताकि वहाँ माशूकको रँगे-हाथ देखकर उसे ज़लीलो-ख़्वार कर सके।

मगर किसी भी भले और शरीफ आशिककी गैरत यह कब गवारा करेगी कि वह अपने माशूकको किसी गैरके पहलूमे ख़ुद अपनी आँखोसे देखे। वह मर जाना पसन्द करेगा, मगर ऐसे ज़लील मंज़रको देखना पसन्द नही करेगा। अब 'मीर'की ख़ुद्दारी देखिए—

इतना रक़ीबे-ख़ानाबर अन्दाज़से सलूक?
जब आ निकलते हैं, यह सुनते हैं कि घर नहीं॥

बदगुमानी और रश्कका यह हाल है कि 'मीर' नही चाहते कि माशूक़ा कही जाय। वह किसी भी कामसे ख़्वाह अपनी रिश्तेदारीमे ही जाती है। 'मीर'को रकीबके यहाँ जानेका शक होता है। क्योकि आशिक शक्की मिज़ाज होता है। मगर ख़ुद्दार एव स्वाभिमानी इतने है कि उसकी टोह लेनेके लिए कही नही जाते।

'मीर'का एक शेर और दिया जा रहा है। मगर इस शेरसे लुत्फ़ अन्दोज़ वही हो सकेगे, जिन्होंने ३०-३५ वर्ष पूर्वका ज़माना देखा है। जब कि शादीसे पूर्व पत्नीका मुख देख सकना असभव था। कई-कई बच्चे हो जानेपर भी पत्नीके मायकेमे उसके दीदार नसीब नही होते थे। पत्नीकी एक झलक दिखा देनेके लिए सालियो-सलेहजोकी ख़ुशामदे की जा रही है। सरदर्दका बहाना करके पडे हुए है। मगर क्या मजाल जो पत्नीकी झलक किसी दीवारो-दरके सूराख़से भी नजर आ जाय। दिल उसे देखनेको तड़प रहा है, मगर अन्तरग यही चाहता है कि मेरी पत्नी इतनी लज्जाशील और बा-हया हो कि वह मुझे दिखाई न दे। अन्यथा उसके पीहरवाले उसे बेहया कहेगे, और उसकी गैरत और मर्दानगीको यह गवारा नही कि उसकी पत्नीपर कोई नुक्ताचीनी करे। अतः ऊपरसे मिलनेका प्रयत्न करते हुए भी वह नही चाहता कि उसकी पत्नी सामने आये।

इसीतरह पत्नी भी नही चाहती कि उसके पतिपर कोई उँगली उठाये। वह भी अपने पतिकी आँखोमे लाजका पानी चाहती है। उसके पतिने अपने बडोके सामने असावधानीवश बच्चा गोदमे ले लिया तो एकान्तमे व्यग्य करते हुए चेतावनी दी कि तुमने यहाँ तो बच्चेको गोदमे ले लिया, कही मेरे पीहरमे ऐसी भूल न कर बैठना, वर्ना माँ-भावज मुझे चूँट-चूँट खायेगी।"

अब 'मीर'का शेर मुलाहिजा फ़र्माएँ—

दाग हूँ रश्के-मुहब्बतसे कि इतना बेताब।
किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला?

अपने प्यारेका आगमन सुनकर उसे देखनेकी आतुरतामे बदहवासीसे प्रियतमा बाहर निकल आई है। उसकी यह हरकत प्रेमीकी धारणाके विपरीत हुई। क्योकि वह तो अपनी प्रियतमाको असूर्यम्पश्या समझता था। हज़ार प्रयत्न करनेपर भी झलक दिखेगी या नही। यही शकित हृदय लेकर वह आया था। मगर यहाँ आकर उसे कुछ दूसरा ही आलम नज़र आया। आशिक आखिर—आशिक है, शक्की उसका स्वभाव है। वह यह तो कल्पना भी नही कर सकता कि उसकी प्रेयसी इतनी निर्लज्ज है कि उसे देखनेको भी बाहर आ सकती है। शक्की स्वभावके कारण वह सशकित हो उठता है और माशूकसे बेताबीमे पूछ बैठता है—

किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला[1]?

गज़लपर एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि उसमे सामयिक घटनाओका उल्लेख नही मिलता। यह आक्षेप किसी हदतक ठीक है।

सामयिक घटनाएँ

क्योकि गजलका निर्माण जिन तन्तुओसे हुआ है, उनका मेल इस तरहकी शाइरीसे नही बैठता। गजलका अस्तित्व चिरकालतक होना चाहिए, इसलिए उसमे

---

[1]ध्यान रहे उर्दू-शाइरीकी प्रथाके अनुसार माशूकके लिए प्रयुक्त क्रिया आदि पुल्लिग लिखे जाते है।

उन घटनाओंको नज्म करनेसे परहेज किया जाता है, जो आँधीके समान बढ़ती-घटती हैं।

फ़ारसीके मशहूर शाइर हाफिजके जीवनकालमे उसका देश ५ बार विजित हुआ। कभी किसी विजेताने उसे वीरान कर दिया। कभी किसीने उसे चमन बना दिया। विजेता आँधी-तूफानकी तरह आये और विलीन हो गये। हाफिजने यह सब इन्कलाब अपनी आँखोसे देखे। मगर एक भी घटनाका उल्लेख उन्होंने अपनी शाइरीमे नही किया। फिर भी क्यो उनकी शाइरी इतनी बुलन्द और प्रभावशाली है कि सदियाँ गुजर जाने-पर भी उसी तरह तरो-ताजा बनी हुई है ? बार-बार पढनेपर भी मन लालायित बना रहता है।

इसका कारण यही है कि उन्होने जो इन्कलाब अपने जीवनमे देखे, उन्हे देखकर वे बिलखे नही। चुपचाप सहते गये और स्वय साकार व्यथा बन गये। परिणाम इसका यह हुआ कि जो भी बोल व्यथित हृदयतन्त्रीसे निकला अमर हो गया।

समुद्र-मन्थनसे निकले हुए विषको देखकर बाबा भोलेनाथ चीख उठते तो उन्हे महादेव कौन कहता ? महादेव तो वे तभी समझे गये, जब ससारका ज़हर वे स्वय पीकर बैठ गये।

नज़्म-गो और गज़ल-गो-शाइरोमे यही अन्तर है। नज़्म-गो शाइर आपदाओंको देखकर उससे प्रभावित होता है, और जो देखता है, उसे बढा-चढ़ाकर दूसरोपर ज़ाहिर करता है। गजल-गो शाइर आपदाओंको अपनेमे जज्ब कर लेता है, फिर जो जज्बात उसके मुँहसे प्रस्फुटित होते है। वही गज़ल कहलाते हैं।

उर्दूके अमर शाइर मीर, गालिब ऐसे ही शाइर हुए है। उनके जीवन-कालमे बादशाहते मिटी, दिल्ली लुटी, और न जाने कितने इन्कलाब आये। सब उतार-चढाव अपनी आँखोसे देखे। निरुपाय बने घुटते रहे, मिटते रहे।

उन इन्कलाबातने जो हश्र बरपा किया, उनके बारेमे 'मीर' इतना कहकर चुप हो गये—

दीदनी है शिकस्तगी दिलकी[1]।
क्या इमारत ग़मोने ढाई है॥

और गालिब इससे ज्यादा क्या कहते ?—

चिराग़े-मुर्दा हूँ मै बे-ज़बाँ गोरे-ग़रीबाँका[2]

उनके जीवनमे जितनी मुसीबते आ सकती थी, आई। वे मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहे—

हो चुकीं ग़ालिब ! बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥

लेकिन ऐसा भी नही है कि गज़लगो शाइरोने सामयिक घटनाओपर कुछ भी नही कहा हो ! कहा है, परन्तु बहुत सक्षेपमे और नपे-तुले शब्दोमे। 'मीर'के जीवनकालमे कादिर रहीलाने शाहआलम बादशाहकी आँखोंमे नीलकी सलाइयाँ फेरकर उन्हे ज्योतिहीन कर दिया था। इस दर्दनाक घटनाको 'मीर'ने अपनी गज़लके एक शेरमे यूँ व्यक्त किया है—

शहाँ कि कुहले-जवाहर थी ख़ाके-पा जिनकी।
उन्हींकी आँखोंमें फिरती सलाइयाँ देखी[3]॥

इस घटनाको 'मीर'ने इतने सक्षेपमे बयान किया है, कि कुछ कहनेको शेष नही रहा। इसी घटनाको इकबालने नज्ममे प्रस्तुत किया है, जिसमे काफी अशआर है।

---

[1]दिलकी बर्बादी देखने योग्य है; [2]खामोश कब्रका बुझा हुआ दीपक; [3]जिन बादशाहोकी पाँवकी ख़ाक जवाहरका सुर्मा समझी जाती थी, उन्ही बादशाहोकी आँखोमे सलाइयाँ फिरती देखी गईं।

वर्त्तमान युगीन गजलगो शाइरोमे यह भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है कि ग़ज़लमे भी सामयिक घटनाओं, लोकोपयोगी कार्यों और अन्य आवश्यक विषयोंका समावेश किया जाय, ताकि गजल अधिक-से-अधिक उपयोगी और समृद्धिशाली बन सके और वह मानसिक भूख मिटानेके अतिरिक्त भी हर तरहसे जीवनोपयोगी बने। इसतरहके हज़ार-हा शेर 'शेरो-सुख़न'के चारो भागोंमे मिलेंगे। विषयको स्पष्ट करनेके लिए चन्द शेर शीर्षकके साथ यहाँ दिये जा रहे हैं; ताकि उस तरहके अशआर पुस्तकमे सुगमतापूर्वक खोजे जा सकें। साथ ही गज़लका शेर अपने अन्दर कितने भाव रखता है, यह भी दृष्टि प्राप्त हो सके।

नैतिक

असर लखनवी—ईमाँ ग़लत उसूल ग़लत, इद्दआ[1] ग़लत।
इन्साँकी दिल दही[2] अगर इन्साँ न कर सके॥

वोह काम कर बुलन्द हो, जिससे मज़ाक़े-ज़ीस्त[3]।
दिन जिन्दगीके गिनते नहीं माहो-सालसे॥

क्या-क्या दुआएँ माँगते हैं सब मगर 'असर'।
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ[4] न हो॥

नज़्म तबातबाई— क़ाबूसे नफ़्से-बदको[5] निकलने कभी न दो।
फिर शेर है जो यह सगे-दीवाना[6] छुट गया॥

एहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्ज़-ए-बेगाना[7] छोड़कर॥

---

[1]दावा; [2]दिल रखना; [3]जीवनका लक्ष्य; [4]इच्छा; [5]बुरी आदतको; [6]पागल कुत्ता; [7]हरीभरी घासको।

आरज़ू लखनवी—

फैल गई बालोंमें सुफ़ेदी, चौंक ज़रा करवट तो बदल।
शामसे ग़ाफ़िल सोनेवाले! देख तो कितनी रात हुई॥

इज़्ज़त कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ ख़ुरोसके[1] सरपर भी ताज है॥

शबनमके[2] आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं ग़ुंचे[3]।
उनसे तो कोई पूछे कबतक हँसा करेंगे?

मिले भी कुछ तो है बहतर तलबसे इस्तग़ना[4]।
बनो तो शाह बनो, 'आरज़ू' गदा[5] न बनो॥

हुस्ने-सीरतपर[6] नज़र कर, हुस्ने-सूरतको[7] न देख।
आदमी है नामका गर ख़ू[8] नहीं इन्सानकी॥

ग़ुबार उठता है यह कहता हुआ गोरे-ग़रीबाँसे[9]।
"जहाँमें एक दिन सबका यही अंजाम होना है॥"

ग़म दिया है कि मसर्रत दी है, सबमें इक तरहकी लज़्ज़त दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी गम हो जाये, शै हरइक हस्ब ज़रूरत दी है॥

शाद अज़ीमाबादी—

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा ख़ामोशीके दम न मारा।
शरीफ़ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफ़त कहाँ रहेगी॥

हवाये-दहर[10] बिगाड़े हज़ार फूलोंको।
न हो वोह रंग शराफ़तकी कुछ तो बू होगी॥

---

[1]मुर्ग़के; [2]ओसके; [3]कलियाँ; [4]सन्तोष; [5]भिक्षुक; [6]सुन्दर स्वभाव-पर; [7]सुन्दर मुखको; [8]स्वभाव, [9]क़ब्रिस्तानसे; [10]दुनियाकी हवा।

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया।
तअ़ाज्जुब है कि तो भी ज़ुमर-ए-इन्साँमें[1] नाम आया।।

बशरके दिलमें न पड़ता जो आरज़ूका दाग़।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता।।

भलाई इसलिए चाही कि हों भले मशहूर।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम।।

गुलोंपर क्या है, काँटों तकका मैं दिलसे दुआ गो हूँ।
ख़ुदा बन्दा! न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका।।

यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक़ न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा।।

मुर्दोंकी क़नाअतोंपै[2] है रश्क़[3]।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा।।

अनवर साबरी—अम्ने-आलम[4] तो मुश्किल नहीं है।
आदमी, आदमी हो तो जाये।।

अब्र अहसनी— ग़मो-दर्दपै बढ़के क़ब्ज़ा जमाले।
कि इसपर नहीं मुनइमोंका[5] इजारा[6]।।

अगर अब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो क़िस्मत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा।।

अशअ़र मलीहाबादी— चमनमें बहे लाख शबनमके[7] आँसू।
कली सीखती ही रही मुसकराना।।

---

[1]मनुष्योंकी श्रेणीमे; [2]सन्तोषपर; [3]ईर्ष्या; [4]विश्वशान्ति; [5]धनिकोंका; [6]दावा; [7]ओसके।

असद भोपाली—'असद' चलो कि बदल दें हयातकी[1] तकदीर।
हमारे साथ जमानेका फ़ैसला होगा॥

ख़लिश दर्दी— खेलते हैं जो मज़लूमोंकी[2] जानोंसे।
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानोंसे॥

दर्द सईदी टोंकी—अभी आदमी-आदमीका है दुश्मन।
अभी खुदको समझा नही आदमीने॥

जहाँ सैकड़ों बुतकदे[3] ढा दिये हैं।
खुदा भी तराशे हैं कुछ बन्दगीने॥

आनन्दनारायण मुल्ला—
ख़ूने-जिगरके कतरे, और अश्क बनके टपकें?
किस कामके लिए थे, किस काम आ रहे हैं?

खुदापर व्यंग्य

नक़्श सहराई—सफीनेका[4] नहीं, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे[5] नाख़ुदाको,[6] वोह ख़ुदा क्या॥

यगाना चंगेज़ी—आई को टाल दे जभी जानें।
दम-ब-खुद है तो फिर ख़ुदा क्या है॥

बिस्मिल सईदी—
इलाही दुनियामें और कुछ दिन अभी कयामत न आने पाये।
तेरे बनाये हुए बशरको[7] अभी मैं इन्साँ बना रहा हूँ॥

---

[1]जिन्दगीकी; [2]सताये हुओंकी; [3]मन्दिर; [4]नावका; [5]संकेत, इशारा; [6]मल्लाहको; [7]आदमीको।

उपासनाएँ

बिस्मिल सईदी—

नहीं अपने किसी मक़सदसे[1] ख़ाली कोई भी सज्दा[2]।
ख़ुदाके नामसे करता है इन्साँ बन्दगी अपनी॥

आरज़ू लखनवी—ज़ाते ख़ुदामें यूँ हो महव।
नामे-ख़ुदाको भूल जा॥

यगाना चंगेज़ी—बन्दे न होंगे जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सज्दा करे कोई॥

धन-कुबेरोंसे

मुख़्तार अदीबी—

तुम्हें मुबारक हो क़सरो-ईवाँ,[3] यह ऐशो-मस्तीके साज़ो-सामाँ।
हूँ झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूँगा॥

साक़िब लखनवी—

मकाँ मुनअ़मका[4] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका[5] घर भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

आरज़ू लखनवी—

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुज़र[6]।
तुम्हें ख़ाकसारोंकी[7] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[8]?

---

[1]मतलबसे; [2]नमाज-उपासना; [3]महल; [4]धनिकका महल; [5]घास-फूँसका; [6]मार्ग; [7]दीन-दुखियोकी; [8]कमरेसे।

निर्धनता

रियाज़ ख़ैराबादी—मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफलिसीकी मौत भी अच्छी नहीं ॥

यगाना चंगेज़ी— ख़्वाह पियाला हो, या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न मांग ॥

पराई आग

दत्तात्रिय कैफी—ग़म रहा उनका जो दोज़ख़में पड़े जलते हैं।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ ॥

रियाज़ ख़ैराबादी—मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़ख़में।
किसीका जुर्म हो, मालिक मुझे सज़ा देना ॥

मनुष्यकी मजबूरियाँ

राज़ यज़दानी—अजब करम है, कि बे-अख़्तियारियाँ देकर।
अता किया है दो आलमपै अख़्तियार मुझे ॥

शेरी भोपाली—न जीनेपर ही क़ाबू है, न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्हीं मजबूरियोंका नाम इन्साँ है ॥

अपनी भाषा

यगाना— समझमें कुछ नहीं आता,
पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल ?
नमाज़ोंका है कुछ मतलब तो
परदेशी ज़बाँ क्यों हो ?

ये नसीहतकार

अयूब—जो हुस्नो-इश्क़की रूदादसे[1] है बेगाने[2]।
वोह् क्या समझके चले आये मुझको समझाने॥

नागरिकता

तसव्वुर किरतपुरी—

कुछ मेरे बाद और भी आयेंगे क़ाफ़िले[3]।
काँटे यह रास्तेसे हटा लूँ तो चैन लूँ॥

साम्यवाद

आनन्दनारायण मुल्ला—

महर[4] वोह् है ख़ाकके ज़र्रे जो करदे ज़रनिगार[5]।
ऊँची-ऊँची चोटियोंपर, नूर[6] बरसानेसे क्या॥

न जानें कितनी शमएँ गुल हुईं, कितने बुझे तारे।
तब इक ख़ुरशीद[7] इतराता हुआ बाला-ए-बाम[8] आया॥

भक्त-वत्सलता

असर— उसकी रहमतको[9] नाज़[10] हो जिसपर।
तुझसे ऐसी 'असर' ख़ता न हुई॥

आरज़ू— करमपै[11] तेरे नज़र की तो ढँगया सब ग़रूर।
बड़ा था नाज़ कि हदका गुनहगार हूँ मैं॥

---

[1]कहानीसे; [2]अनभिज्ञ; [3]यात्रीदल; [4]सूर्य्य; [5]प्रकाशमान; [6]प्रकाश; [7]सूर्य; [8]कमरेके ऊपर; [9]दयालुताको; [10]अभिमान; [11]कृपापर।

मज़हबसे बेज़ारी

यगाना— दुनियाके साथ दीनकी बेगार अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ, जानवर हुआ॥

बस एक नुक़्त-ए-फ़र्ज़ीका नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीक़का पता न चला॥

मज़हबसे दग़ा न कर, दग़ासे बाज़ आ।
किस कामका हज! मकरो-रियासे बाज़ आ॥
ईमान तो कहता है कि इन्साँ बन जा।
बन्देकी मददको आ, ख़ुदासे बाज़ आ॥

फ़िरक़ा-परस्ती

यगाना— पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोज़में इन्साँ हो जाय॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या?
सिर फिरा दे इन्साँका ऐसा ख़ब्ते-मज़हब क्या?

महराबोंमें सज्दा वाजिब, हुस्नके आगे सज्दा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै ख़ुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

आनन्दनारायण मुल्ला—

मैं फ़क़त इन्सान हूँ, हिन्दू-मुसलमाँ कुछ नहीं।
मेरे दिलके दर्दमें तफ़रीके-ईमाँ कुछ नहीं॥

असर लखनवी—मसजिदेवाज़से इक रिन्द यह कहते उट्ठा—
"काफ़िर अच्छे हैं दिलाज़ार मुसलमानोंसे"॥

निशात सईदी—है दिल बबाये फ़िरक़ा परस्तीका है शिकार।
इन्सानियतकी मौत नुमायाँ अभीसे हैं॥

सर्व-धर्म-समभाव

अज़ीज़ लखनवी—

मंज़रे-जज़्बात[1] है, ख़िलवत सरा-ए-दैर[2] भी।
काबेवालो फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी॥

यगाना— खड़े हैं दुराहेपै दैरो-हरमके[3]।
तेरी जुस्तजूमें सफ़र करनेवाले॥

अज़ीज़ लखनवी—

ज़हनमें आया न फ़र्क़े-इम्तयाज़ों[4] आजतक।
मुद्दतों देखा है हमने काबा-ओ-दैर भी॥

अहिंसा

आनन्दनारायण मुल्ला—

तशद्दुदको[5] तशद्दुदसे दबालें यह तो मुमकिन है।
मगर शोलेको[6] शोलेसे बुझाया जा नहीं सकता॥

दिखा सकेगी न हरगिज़ जहाँको अम्नकी[7] राह।
सितमगरीकी वोह मशअ़ल[8] जो दूदसे[9] हो सियाह॥

इन्साँकी जहालतका अभी है वही मेयार[10]।
है सबसे सिवा पुख़्ता दलील आज भी तलवार॥

[1,2]मन्दिरकी एकान्त शान्ति देखने योग्य है; [3]मन्दिर-मस्जिदके; [4]भेद, अन्तर; [5]हिंसाको; [6]आगको; [7]शान्तिकी; [8]मशाल; [9]धुएँसे; [10]आदर्श, रिवाज।

प्रसगके अनुसार जो अशआर जहनमे आये, वे इस परिच्छेदमे दिये गये है। ऐसे हजारो शेर शेरो-सुख़नके समस्त भागोमे यत्र-तत्र मिलेगे। यह तो एक झलक मात्र है। बकौल दिल शाहजहाँपुरी—

मेरा हाल था जहाँतक, वोह अदा हुआ ज़बाँसे।
जो कहेंगे अश्के-रंगी, वोह अलग है दास्ताँसे॥

१६ अप्रैल १९५४ ई०]

[संशोधित संस्करण सितम्बर १९५७ ई०]

मुशाअ़रा
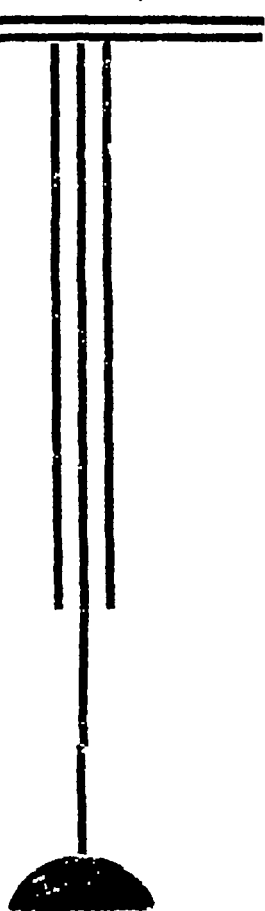
महफ़िल-मुशाअ़रा

१. मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप
२. मुशाअ़रोंका विकसित रूप
३. मुराख़्ते
४. मुनाज़मे
५. तहरीरी मुशाअ़रे
६. मौजूदा मुशाअ़रे

मुशाअ़रोंका प्रचलन कब और कैसे हुआ और इनकी दागबेल डालने-वाला कौन था, यह बता सकनेमे इतिहासके पृष्ठ असमर्थ है, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सुख़नगोईका रिवाज अरबमे इस्लाम धर्मके पूर्व भी था। मुशाअ़रोंका विकसित, व्यवस्थित और निखरा हुआ रूप जो आज है, भले ही वह तब न हो, परन्तु एक अस्पष्ट-सा मानचित्र अवश्य था, जिसपर वर्त्तमान मुशाअ़रोंका निर्माण हो सका।

मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप

इस्लामधर्मके पूर्व अरबके कबाइली, अशिक्षित, एवं जनसाधारण, हाटो, मेलों, त्योहारों, उत्सवों आदिपर जब एकत्र होते तो उनमे शाइरीका शौक रखनेवाले परस्पर शेर कहते-सुनते थे। कभी यह शेरगोई सीमित व्यक्तियोंमे होती थी, कभी जनसमूहमे होती थी। परस्पर प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। एक-दूसरेपर शाइरीमे चोट करते थे। एक प्रकारसे यह ग्रामीण तुकबन्दी वाद-विवादका रूप ले लेती थी।

बहुत दिन नही गुज़रे इसीतरहकी अखाड़े बाजी हिन्दी-कविताकी मैंने अपने बचपनमे (१९१०-१९२०) में मथुरा ज़िलेके कसवों-गाँवोंमे देखी है। वहाँ झूलना, लावनी, सवैया, आदि कहनेवालोके बाकायदे दल होते थे, जो कि उस दलके उस्तादोके नामपर अखाड़े कहलाते थे। बा-कायदा उस्तादी-शागिर्दी चलती थी। यह अखाड़ेबाज़ी कोई आजी-विकाका साधन नही थी, अपितु शौकिया थी। कसबेमे बारात आई नही कि छेड़-छाड़ करनेको बडे-बूढे, युवा-बालक, सभीके जी मचलने लगे। उन दिनों मज़ाक करनेका एक आम रिवाज था। बड़े-से-बड़े बारातीको अदना-से-अदना व्यक्ति छेड़ सकता था, परन्तु क्या मजाल कि कोई बुरा मान जाय। यही छेड़-छाड़ कभी-कभी कवित्तगोईका रूप ले लेती थी।

जहाँ किसी एकने परिहासमे कवित्त कह दिया कि सामनेके पक्षको उसका जवाब कवित्तमे देना लाज़िमी हो जाता था, और कवित्तमे एक-दूसरेपर फ़ब्तियाँ कसता था। एक-दूसरेकी बोलती बन्द करनेके लिए कवित्तमे अटपटे, पेचीदा प्रश्नोत्तरोकी झडी लगा देते थे। गरज हर गिरोह नहले-पर दहला मारनेकी ताकमे रहता था, और इस तरहकी मुकाबिलेबाज़ी करनेके लिए अवकाशके समय ख़ूब अभ्यास किया जाता था।

लावनी कहनेवालोके उत्तर प्रदेश तथा देहलीकी तरफ़ कलगीवाले और तुर्रेवाले दो दल बहुत प्रसिद्ध है। इनमें परस्पर ख़ूब प्रतिद्वंद्विता चलती है। कभी-कभी बड़े मार्केके मोर्चे जमते हैं। इनमे बहुत-से पेशे-वर भी होते है। जो बाजारो, मेलो, तमाशोंमे चगपर गाते हुए फिरते है और सुननेवालोसे पैसा एकत्र करते है।

अरब या भारतके इन मजमोको मुशाअ़रा या कवि-सम्मेलन भले ही न कहा जाय, परन्तु नीवकी ईंट तो कहना ही पड़ेगा, क्योकि इन्हीपर इनका निर्माण हुआ है। जब लिखने-पढनेके साधन नही थे, तब यही मजमे साहित्यिक अभिरुचिको तृप्त करते थे।

तरही मुशाअरोका प्रचलन सम्भवतः सबसे पहिले ईरानमे ईसाकी दसवी शताब्दीमे हुआ।

अरबके उन मजमोमे देहाती जीवनकी झलक होती थी, जन-साधारणके मनोभावोका प्रतिविम्ब होता था, और ईरानके इन मुशाअ़रोमे दरबारी शानो-शौकत होती थी। दरबारसे सम्बन्धित शाइर बादशाहोके कृपा-पात्र बननेके लिए और अधिक-से-अधिक अर्थ झटकनेके लिए बादशाहोकी खुशामदमे प्रशसात्मक अतिशयोक्तियोसे भरे क़सीदे कहते थे। अपने-अपने कसीदे कहकर ही सन्तोष नही करते थे, अपितु एक-दूसरेके कसीदेको निम्नस्तरका साबित करनेकी धुनमे उन कसीदोपर फिलबदी क़सीदे भी कहते थे। इसीतरह गज़लोपर गज़ले कहते थे। इसतरहके मुशाअरे दरबारोतक ही सीमित थे। जन-साधारणका इनसे कोई सरोकार नही था।

भारतमे फ़ारसी मुशाअ़रोंका प्रचलन सोलहवी शताब्दीमे हुआ। मुग़लिया सल्तनतके पाँव जमनेपर यहाँ ईरानी शाइर बहुत बड़ी संख्यामे आने लगे, और उन्हें दिल्ली, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सल्तनतोंमे सम्मानपूर्वक आश्रय मिलने लगा। तत्कालीन शासकोंका आतिथ्य-सत्कार, उदारता, दान-शीलता और साहित्यिक अभिरुचि ही उनके यहाँ आते रहनेके मुख्य आकर्षण थे। ईरानी शाइरोंके आनेपर यहाँ भी फ़ारसीके दरबारी मुशाअ़रे होने लगे।

मुशाअ़रोंका विकसित रूप

मुहम्मद शाही दौर (१८वी शताब्दी) मे जब कि मुगलिया सल्तनत पतनोन्मुखी थी, मुशाअ़रे अपने चरम विकासपर थे। इस युगमे रेख़्ता (उर्दूका पूर्व नाम) काफ़ी उन्नति कर चुकी थी, और मीर, दर्द, सौदा, सोज—जैसे उच्च-कोटिके शाइर आस्माने-शाइरीपर चमक रहे थे। फ़ारसी अब केवल रस्मी रह गई थी। जन-साधारणकी भाषा रेख़्ता हो गई थी। अतः फ़ारसी मुशाअ़रोंके अलावा अब रेख़्तेके मुशाअ़रे भी होने लगे, जो कि फारसी मुशाअ़रोसे पृथकता एव भिन्नता दिखानेकी गरज़से मुराख़्ते कहलाते थे। इन मुराख़्तोंकी शानो-शौकत और सजावटका क्या कहना? महीनो पहलेसे तैयारियाँ होती थी। ऐसे ही एक मुराख़्तेकी कलमी तसवीर मिर्जा फरहत उल्लाबेगने इस प्रकार खीची है—

मुराख़्ते

"चूनेमे अबरक मिलाकर मकानमे क़लई की गई थी। जिसकी वजहसे दरो-दीवार बडे जगमग-जगमग कर रहे थे। तख़्तोंपर चाँदनीका फ़र्श, उसपर कालीनोका हाशिया, पीछे गावतकियोकी कतार, झाडों, फानूसो, हाँड़ियों, दीवालगीरियों, कुमक़ुमो, चीनी-कन्दीलो और गिलासोंकी वोह बहुतायत थी कि तमाम मकान बकिया नूर बन गया था। जो चीज थी ख़ूबसूरत और जो शै थी क़रीनेसे। सामनेकी सफके बीचो-बीच छोटा-सा

सब्ज़ मखमलका कारचोबी शामियाना, गगा-जमुनी चोबोपर सब्ज़ई रेशमी तनावोंसे अस्ताहद[1] था। उसके नीचे सब्ज़ मखमलकी कारचोबी मसनद, पीछे सब्ज़ कारचोबी गावतकिया, चारो चोबोपर छोटे-छोटे आठ चान्दीके फ़ानूस कसे हुए, फ़ानूसोके कँवल भी सब्ज़[2]। चोबोके सुनेहरी कलसोसे लगाकर नीचेतक मोटे-मोटे मोतियाके गजरे सेहरेकी तरह लटके हुए, बीचकी लड़ियोको समेटकर कलाबत्तूनी डोरियोसे (जिनके सिरोंपर मुक्कैशके[3] गुच्छे थे) इस तरह चोबोपर कस दिया गया था कि शामियानेके चारो तरफ फूलोके दरवाज़े बन गये थे। दीवारोपर जहाँ खूँटियाँ थी, वहाँ खूँटियोपर और जहाँ खूँटियाँ नही थी, वहाँ कीले गाड़कर फूलोके हार लटकाये थे। इस सिरेसे उस सिरेतक सफ़ेद छतगिरी, जिसके हाशिये सब्ज़ थे, खीची हुई थी। छतगीरीके बीचोबीचमे मोतियोके हार लटकाकर लडियोंको चारो तरफ़ इस तरह खीच दिया था कि फूलोंकी छतरी बन गई थी। एक सहनचीमे पानीका इन्तज़ाम था। कोरे-कोरे घडे रखे थे और शोरेमें जस्तकी सुराहियाँ लगी हुई थी। दूसरी सहनचीमे पान बन रहे थे। बावर्चीखानेमें[4] हुक्कोका तमाम सामान सलीकेसे जमा हुआ था। जा-बजा नौकर साफ सुथरा लिबास पहिने दस्तबस्ता मुअदब[5] खडे थे। तमाम मकान मुश्को-अम्बर[6] और अगरकी[7] खुशबूसे पड़ा महक रहा था। कालीनोके सामने थोडे-थोड़े फासलेपर हुक़्कोंकी क़तार थी। हुक़्के ऐसे साफ सुथरे थे कि मालूम होता था अभी दुकानपरसे उठ आये है। हुक्कोके बीचमे जो जगह छूट गई थी, वहाँ छोटी तिपाइयाँ रखकर उनपर खासदान[8] रख दिये थे। खासदानोमे लालकन्दकी[9] साफियोंमे लिपटे हुए पान। गिलोरियोको साफीमे इसतरह जमाया था कि बीचमे एक-एक तह फूलोकी आ गई थी। ख़ासदानोके बराबर छोटी-छोटी

---

[1]सुसज्जित; [2]क्योकि शाही निशान सब्ज़ था; [3]चान्दी या सोनेके तारोके; [4]रसोई घरमे; [5]नम्रता-पूर्वक; [6]कस्तूरी; [7]चन्दनकी बत्तीकी; [8]पानदान; [9]लाल कपड़ेकी।

किश्तियाँ, उनमे इलायचियाँ, चिकनी डलियाँ। मसनदके सामने चान्दीके दो शमादान, अन्दर काफूरी बत्तियाँ, ऊपर हलके सब्जरगके छोटे कँवल, शमादानके नीचे चान्दीके छोटे लगन (थाली), लगनोमे केवड़ा। गरज़ क्या कहूँ एक अजीब तमाशा था"।[1]

शुरू-शुरूमे यह मुराख़्ते भी दरबारतक ही सीमित रहे; परन्तु शनैः शनैः सार्वजनिक रूप लेते गये। फ़ारसीके मुशाअ़रे माँद पड़ते गये और मुराख़्ते अब मुशाअ़रे कहे जाने लगे।

दिल्ली उजड़नेके बाद वहाँके शाइर लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद, अजीमाबाद (पटना), टाँडा, टोक आदि जिन रियासतोमे पहुँचे, मुशाइरोकी दागबेल डाल दी और इस तरह उर्दू-मुशाइरे सर्वत्र होने लगे।

यह मुशाअ़रे साहित्यिक जीवनका एक अग बन गये। इनको व्यव-स्थिति और सुरुचिपूर्ण रूप देनेके लिए कायदे-कानून भी बनाये गये। उनका उल्लघन या पूर्णरूपेण पालन न करना असभ्यता एव बदतमीज़ी समझी जाती थी।

'मीर-मुशाअ़रे' का इन्तखाब (अध्यक्षका चुनाव), गजल कहनेका सलीका, दाद देनेका तरीका, दाद मिलनेपर शाइरके आभार प्रदर्शित करनेका शऊर, श्रोता और शाइरोके बैठनेके स्थान, पहले और बादमे पढ़नेके नियम निश्चित किये गये।

दरबारी मुशाअ़रोंमे मीर मुशाअ़रा स्वय शासक होता था। पहले वह स्वय गजल पढता था, बादमे अन्य शाइर। मीर मुशाअ़रेके सकेतपर चोबदार जिस शाइरके सामने शमअ़ रख देता था, वही शाइर गज़ल पढता था। जब मुशाअ़रे दरबारकी परिधिसे निकलकर आम हो गये, तब भी किसी शासकको ही मीर मुशाअ़रा बनानेका प्रयत्न किया जाता था। क्योकि इससे ख्यातिप्राप्त शाइरो एव प्रतिष्ठित नागरिकोको सुगमता-

---

[1]आख़िरी शमअ़, पृ० ३१-३३।

पूर्वक मुशाअ़रेके लिए आकर्षित किया जा सकता था। जैसे कि वर्त्तमानमे प्रायः समारोहोका अध्यक्ष एव उद्घाटन-कर्त्ता किसी मिनिस्टरको ही वनाया जाता है, चाहे उसे उस समारोहके उद्देश्यसे दूरका भी वास्ता न हो, और सचमुच मिनिस्टरोंके कारण समारोह सफल भी होते हैं। इच्छित विद्वानो, प्रतिष्ठित व्यक्तियो, अफसरोका सहयोग तो मिलता ही है, अर्थ-सचय भी सुगमतासे हो जाता है। जव प्रजातन्त्रकालमे यह स्थिति है, तव वह तो सामन्ती युग था। प्रायः सभी अच्छे शाइर दरवारसे सम्वन्धित होते थे, प्रतिष्ठित नागरिकोका भी कुछ-न-कुछ दरवारसे वास्ता होता था और स्वयं शासक शाइर, अथवा शाइर नवाज़ होते थे। अतः उनको मीर-मुशाअरा बनानेका प्रयत्न स्वाभाविक था। श्रोताओ और शाइरोके यथा स्थान वैठ जानेके वाद मीर-मुशाअरा तशरीफ लाते थे। एक देहलवी मुशाअरेके मीर मुशाअरा मिर्ज़ा फतहउलमुल्क उर्फ मिर्ज़ा फखरू युवराज थे। उनकी तशरीफ आवरीका चित्र मिर्ज़ा फरहत उल्लावेगने इस प्रकार खीचा है—

"हवादारसे उनका नीचे कदम रखना था कि सब सरोकद खड़े हो गये। चार चोवदार सब्ज खिडकीदार पगडियाँ बान्धे, नीची-नीची सब्ज़ बानातकी अचकने पहने, सुर्ख़शाली रूमाल कमरसे लपेटे, हाथोमे गगा-जमुनी असा और मोरछल लिये हुए हवादारके पीछे थे। उधर मिर्ज़ा फ़खरूने फ़र्शपर कदम रखा। उधर असावरदार तो उनके सामने आगये और मोरछलवरदार पीछे हो लिये। इस सिलसिलेमे यह जुलूस आहिस्ता-आहिस्ता शामियानेतक आया। मिर्ज़ा फखरूने शामियानेके करीब खडे होकर सवका सलाम लिया। फिर चारों तरफ नज़र डालकर कहा "इजाज़त है।" सबने कहा—"बिस्मिल्लाह-बिस्मिल्लाह" इजाज़त पाकर यह शामियानेमे गये और सबको सलाम करके वैठ गये। दूसरे सब लोग वैठनेकी इजाजतके इन्तज़ारमे खडे थे। उन सबकी तरफ नजर डालकर कहा—"तशरीफ रखिए, तशरीफ रखिए।" सब लोग सलाम करके

अपनी-अपनी जगह बैठ गये।......मोरछलबरदार शामियानेके पीछे और असाबरदार सामनेकी सफ़की पुश्तपर जा खडे हुए।......"मीर मुशाअ़रेका इशारा पाते ही दोनों चोबदारोने बा-आवाज बुलन्द कहा—"हज़रात मुशाअ़रा शुरू होता है।"[1]

मुशाअ़रेके अध्यक्ष यदि स्वय बादशाह या नव्वाब होते तो पहले वह स्वय गजल पढ़ते फिर क्रमशः शाइर पढ़ते। यदि किसी सार्वजनिक मुशाअ़रेमे बादशाह शिरकत न फ़रमाते और प्रबन्धकोके आग्रहपर गज़ल भेजना मजूर कर लेते तो मुशाअ़रेके प्रारम्भमे किसी खुश गुलूसे बादशाहकी गजल पढवाई जाती, फिर मीर मुशाअ़रा अपनी ग़ज़ल पढ़ते, फिर बारी-बारीसे जिस शाइरके आगे शमअ़ रखी जाती, वह पढ़ता था। शाइरोके पढनेका ढग और अन्दाजे-बयान अपना-अपना होता था। मगर कुछ शाइर ऐसे भी होते थे, जो पढनेके साथ हाव-भाव भी व्यक्त करते थे। एक बानगी देखिए—

"शमअ़ सरक कर लाला बालमुकुन्द 'हुजूर' के सामने आई। यह जातके खत्री और ख्वाजा मीर 'दर्द' के शागिर्द है। कोई ७०-८० बरसका सिन है। सफ़ेद नूरानी चेहरा, उसपर सफेद लिबास, बगलमे अँगोछा, कंधोंपर सफेद काश्मीरी रूमाल। बस जी चाहता था कि उनको देखे ही जाइए। शमअ़ सामने आई तो उन्होने उज्ऱ किया कि—"मै अब सुनानेके क़ाबिल नही रहा। सुननेके काबिल रह गया हूँ।" जब सभोने इसरार किया तो उन्होने यह किता पढ़ा—

न पाँवोंमें जुम्बिश, न हाथोंमें ताक़त।
जो उठ खींचें दामन हम उस दिलरुबाका॥
सरे-राह बैठे हैं और यह सदा है।
कि अल्लाहवाली है बे दस्तो-पाका॥

---

[1]आख़िरी शमअ़, पृ० ४२-४३।

किता इस तरह पढा कि खुद तसवीर हो गये। 'न पॉवोमे ताकत' कहते हुए उठे, मगर पाँवने यारी न की, लडखडाकर बैठ गये। 'न हाथोमे ताकत' कहकर हाथ उठाये, मगर जोफसे वह भी कुछ यूँ ही उठकर रह गये। दूसरा मिसरा जरा तेज पढा। तीसरा मिसरा पढते वक्त इसतरह बैठ गये, जैसे कोई बे-दस्तो-पा सरे-राह बैठकर सदा लगाता है और एक दफा ही दोनो आँखोको आसमानकी तरफ उठाकर जो चौथा मिसरा पढा तो यह मालूम होता था, गोया सारी मजलिसपर जादू कर दिया। हरेकके मुँहसे तारीफके बजाय बे-साख्ता यही निकल गया कि "अल्लाह वाली है बे दस्तो-पाका।"[१]

अच्छा शेर पढे जानेपर आम तौरपर श्रोताओमे-से 'वाह-वा, सुब्हान अल्लाह, मरहबा' आदिका शोर बुलन्द होता ही था। मगर शाइर भी अपने ढगसे दाद देते थे। इस तरहके दाद देनेके ढगकी एक ख़याली तसवीर बाबा-ए-उर्दू अल्लामा प० दत्तात्रिय 'कैफी'ने यूँ खीची है—

"शमअ इन्शाके सामने रखी जाती है। इन्शा गज़ल पढते है—"

कमर बान्धे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे है।
बहुत आगे गये बाक़ी जो है तैयार बैठे है॥

सौदा—क्या मतला कहा है ?
मीर—लफ़्ज है कि तीरो-नश्तर।
दर्द—सैयद इन्शा ! इसकी दाद है छाती कूटना।
मुसहफी—वाह क्या हमागीर तबीयत पाई है। क्या दर्दभरा मतला कहा है।
नसीम—बे पनाह मतला हुआ है।
नासिख़—वल्लाह दिल भरा आता है।
ज़ौक—दो मिसरे है कि दुधारा तेगा, दिलमे खुबा जाता है।
गालिब—लुत्फ यह कि हुस्ने-अदा कितनी नुदरत लिये हुए है।

---

[१]आख़िरी शमअ, पृ० ७१।

इन्शा— न छेड़ ऐ निकहते-बादे-बहारी राह लग अपनी ।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं ।।

मीर—"शेर है कि दुगाडा। अब ऐसा शेर और न पढना, वरना एक-आध जनाजा आज मुशाअ़रेसे उठेगा।"[1]

इन मुशाअ़रोका प्रारम्भ भी दरबारोंसे हुआ था। अतः इनमे भी वे सब दोष आगये जो फ़ारसी मुशाअ़रोमे थे। प्रतिद्वद्वीको नीचा दिखानेके लिए उस्ताद अपने शिष्योंके दलके साथ आते। ये शिष्य प्रतिद्वन्द्वीके पढनेपर फब्तियाँ कसते, नुक्ताचीनी करते, व्याकरणकी भूल निकालते, शेरमे कहे हुए भावोके लिए प्रमाण माँगते और अपने पक्षके शाइरके गज़ल पढनेपर खूब-खूब दाद देते। कौन कहाँ बैठे और कौन पहिले या बादमे पढे, इसपर भी ऐतराज उठते। परिणामस्वरूप यह मुशाअ़रे साहित्यिक गोष्ठी न रहकर पहलवानी अखाडे बन गये।

'सौदा' जिससे नाराज हो जाते, भरी महफिलमे उसकी हिजो कह डालते। 'आतिश'-ओ-'नासिख़', 'मुसहफी'-ओ-'इन्शा', 'जुरअत-ओ-'करेला' भाण्डके वाद-विवादोंने जो घिनावना रूप ले लिया था, उसीसे खीझकर 'मुसहफी' ने तत्कालीन मुशाअ़रोंके बारेमे कहा था—

बज़्मे-शुअ़रा है या यह मुर्गियोंकी पाली है

इन झगडोके कारण बहुत-से लोगोकी तो मुशाअ़रे करानेकी हिम्मत ही न होती थी, और जो साहब अपने यहाँ नियमित[2] मुशाअ़रे कराते थे, उनमे-से भी अक्सर स्थगित करनेको बाध्य हो जाते थे। भले आदमी इन मुशाअ़रोंमे जानेसे घबराते थे। एक साहब हकीम 'मोमिन' को मुशाअ़रेका निमत्रण देने गये तो 'मोमिन' बोले—"बस साहब मुझे तो मुआफ ही कीजिए। अब देहलीके मुशाअ़रे शरीफोके जानेके काबिल नही रहे। एक साहब हैं,

---

[1]तमसीली मुशाअ़रा, पृ० ४६-४७।

[2]कोई साप्ताहिक, कोई मासिक, कोई छमाही मुशाअ़रे कराते थे।

वह अपनी उम्मत (अनुयायियो, शिष्यो) को लेकर चढ आते है। शेर समझनेकी तो किसीको तमीज़ नही, मुफ्तमे वाह, वाह, सुब्हान अल्लाहका गुल मचाकर तबीयतको मुन्नगिज (अप्रसन्न) कर देते है। दूसरे साहब है, वोह हुदहुद (शिष्यका उपनाम) को साथ लिये फिरते है, और ख्वाम-ख्वाह उस्तादोपर हमले कराते है। खुद तो मैदानमे आते नही और अपने ना अहल (मूर्ख) पट्ठोको मुकाबिलेमे लाते है।......भई मैने तो इसी वजहसे मुशाअरोमे जाना ही तर्क कर दिया है।"[1] बाज़-बाज़ शाइर तो अपने साथ बटेरे भी लाते थे। मिर्जा फरहतउल्लाबेग एक मुशाअ़रेके बारेमे लिखते हुए फर्माते है—

"एक चीज जो मुझे अजीब मालूम हुई, वोह यह थी कि किलेवाले (शाहज़ादे वगैरह) जितने आये थे, सबके हाथोमे बटेरे दबी हुई थी। यह बटेरबाज़ी और मुर्गबाजीका मर्ज़ किलेमे बहुत है। रोज़ाना तीतरो, बटेरो और मुर्गोकी पालियाँ होती है। एक शाहजादे साहबने तो कमाल किया है। एक बडे छकडेपर ठाठर लगाकर छोटा-सा घर बना लिया है और ऊपर छतपर मिट्टी डालकर कँगनी बो दी है। ठाठरमे खुदा झूठ न बुलाये तो लाखों ही पिदडियाँ है। जहाँ चाहा छकडा ले गये और पिद-डियाँ उडा दी। ऐसी सधी हुई है कि झल्लडसे एक भी फटकर नही जाती। उन्होने झण्डी हिलाई और वोह उडी, उन्होने आवाज दी और वह छतपर आकर बैठ गई।"[2]

मुशाअ़रा प्रारम्भ होनेपर यह बटेरे थैलियोमे बन्द कर दी जाती थी।

कुछ मुशाअरे बहुत व्यवस्थित और अनुशासनपूर्ण होते थे। बडे-से-बडा आदमी नियम भग करनेका साहस नही कर सकता था। देहलीके प्रसिद्ध सूफी शाइर ख्वाजा 'दर्द' के यहाँ पाक्षिक मुशाअरे हुआ करते थे।

---

[1]आख़िरी शमअ, पृ० २६।

[2]आख़िरी शमअ, पृ० ४२।

शाहआलम भी उसमे शरीक होनेकी अभिलाषा रखते थे। मगर आप टालते ही रहे। बडे आदमियोके स्वागत-सत्कारमे जो कष्ट और ज़िल्लते उठानी पडती है, शायद इसीका ख्याल करके ख्वाजा दर्दने अपनी आध्यात्मिक शान्तिमे विघ्न न डालनेकी गरज़से उन्हे न बुलाना चाहा होगा। फिर भी एक रोज सूचित किये बिना ही बादशाह मुशाअ़रेमे तशरीफ़ ले आये। तशरीफ जब ले ही आये तो जहाँ उचित स्थान मिला, बैठ गये। सयोगकी बात पाँवमे दर्द होनेके कारण बादशाहने पाँव फैला दिये। ख़्वाजा साहबको यह अच्छा न लगा। बोले—"महफ़िलमें पाँव पसारकर बैठना तहज़ीबके खिलाफ है।" बादशाहने अपने दर्दकी कैफियत बताकर मअ़ाज़रत चाही तो ख्वाजा साहबने जवाब दिया कि अगर पाँवमे दर्द था तो यहाँ आनेकी आपने तकलीफ़ ही क्यो की।"[1]

इन मुशाअ़रोसे उर्दूका ख़ूब प्रसार हुआ। वह कोने-कोनेमे पहुँच गई। ज़बान निखरती गई, मुहावरे ख़रादपर चढकर चमकते गये। भावों और उदाहरणोसे उर्दूका कोश भरता गया।

लाभके साथ हानि भी हुई। उस हानिके निम्न कारण थे—

१—कोई भी शाइर उर्दूका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त किये बग़ैर और उस्तादको दिखाये बग़ैर मुशाअ़रेमे गजल नही पढ सकता था। इससे उर्दूका क्षेत्र सीमित होने लगा।

२—विरोधियोकी कटु आलोचनाओके भयसे अक्सर शाइर नवीन भावों-उदाहरणोको शेरमे समोते हुए झिझकते थे और वही पुराने सुने-सुनाये विचारोकी पुनरावृत्ति करते रहते थे।

३—शब्दोंके बाह्य सौन्दर्य और उसके ज़ाहिरा रख-रखावपर दाद अधिक मिलती थी।

४—शाइराना करतब दिखानेके लिए बड़े ऊट-पटाँग, अजीबो-

---

[1]आबे-हयातके लतीफे, पृ० २२।

ग़रीब बेमायने मिसरे-तरह दिये जाते थे। जिनपर कई-कई ग़ज़ले लिखी जाती थी। भला बताइए इस तरहकी मश्के-सुख़नसे उर्दू-शाइरीका क्या महत्त्व बढ सकता था—

बुलबुल चमनसे रूठके बैठी है ठुंठ पर

———

न उड़ा सकता है मुँहकी न बग़लकी मक्खी

———

अयाँ हो नैरंगिये-दिगरसे फ़लकपै बिजली, ज़मीपै बाराँ

———

हुआ रंगी चमन सारा अहा-हा-हा, अहा, हा-हा

———

ज़मी ठंडी, हवा ठंडी, मकाँ ठंडा, चमन ठंडा

१८५७ ई० के विप्लवके बाद ग़ज़लके साथ-साथ मुशाअ़रोकी भी मुख़ालफत प्रारम्भ हुई। एक ही मिसरे तरहपर सैकडों शाइरोकी प्राय एक-से भावो-विचारोकी ग़ज़ले सुनते-सुनते लोग ऊब-से गये थे। अत. लाहौरमे १५ अगस्त १८६७ ई० को 'अंजुमने-उर्दू'की स्थापना की गई। जिसमे नज्मो, भाषणो, और निबधोके पढनेका रिवाज डाला गया। नज्मोकी महफिलोको मुनाज़मा कहा जाता था। इन मुनाज़मोके लिए पहिले-से शीर्षक निश्चित कर दिये जाते थे, जिनपर शाइर नज्म लिखकर लाते और मुनाजमोमे पढते थे। इसप्रकार शाइरीको जीवनके समीप-से-समीप लानेका प्रयत्न किया जाता था। लेकिन यह क्रम अधिक दिन नही चल सका और यहाँ भी नज्म शीर्षकके साथ ग़ज़लोके लिए मिसरा तरह दिया जाने लगा और यह भी आम मुशाअ़रे-जैसी चीज़ बनकर रह गई।

मुनाज़मे

मुद्रणका प्रसार होनेपर मुशाअ़रे तहरीरी भी होने लगे। पत्र-सम्पादक कोई मिसरा तरह देकर उसपर गजल भेजनेको अच्छे-अच्छे शाइरोको आमत्रण करता था और गजले आनेपर पत्रमे प्रकाशित करता था। इन लिखित मुशाअ़रोसे उर्दूको बहुत लाभ पहुँचा। न तो इन लिखित मुशाअ़रोमे महफिली मुशाअ़रोंकी व्यवस्थाकी परेशानी रही और न पारस्परिक कलहका भय। एक ही जगह भिन्न-भिन्न शाइरोंका कलाम सुलभ होनेसे जनताकी रुचि परिष्कृत हुई। अच्छे-बुरे समझनेका शऊर आया। जो अच्छे शाइर अच्छा न पढ़ सकनेके कारण बाज घटिया शाइरोके आगे उनकी गलेबाज़ीकी वजहसे मॉद पड जाते थे, अब पूरे आबो-ताबके साथ चमके। जनतामें शाइरीकी तरफ सही, वास्तविक रुचि उत्पन्न हुई। इस प्रकारके मुशाअ़रे बाज़ उर्दू-पत्र अब भी कराते रहते है। 'शाइर'का १६५०का मुशाअ़रा नम्बर हमारे सामने है।

तहरीरी मुशाअ़रे

इन्हीं अँधेरोंसे बज़्मे-गेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी

मिसरा तरहपर ४ शाइरोकी नज्मे और १०६ शाइरोकी गजले १५२ पृष्ठोमे मुद्रित है। यहाँ हम बतौर नमूना कुछ ख्यातिप्राप्त शाइरोकी नज्मे और गज़लोके अपनी पसन्दके चन्द अशआर हर रगके बहुत-बहुत शुक्रियेके साथ 'शाइर' से उद्धृत कर रहे है।[1]

मुशाअ़रोके इन चुने हुए अशआरसे पाठकोंको विदित हो सकेगा कि एक ही मिसरा तरहपर शाइर अपने भाव किस तरह व्यक्त करते है। साथ ही पुरानी शाइरी और आजकी शाइरीमे कितना महान् अन्तर आ गया है, यह भी जान सकेगे। पुरानी और नई शाइरीपर तुलनात्मक अध्ययन हम विस्तारसे सिंहावलोकनमे दे रहे है।

---

[1]अल्लामा सीमाब अकबराबादी-द्वारा स्थापित और हजरत एजाज़ सद्दीकी-द्वारा सम्पादित। पहले आगरेसे प्रकाशित होता था; अब बम्बईसे प्रकाशित होता है।

नज्मोंके चन्द अशआर

ऐ असरे-नौके शाइर !

ख़बर भी है असरे-नौके शाइर[१] कि जीस्त[२] है एक जुर्मे-संगी[३]।
यह जुर्मकी शमअ़[४] जब बुझेगी तो दौलते-रोशनी[५] मिलेगी ॥
रुबाब[६] जब बे-सदा[७] बनेगा तो राग गूँजेंगे ज़ेरे-गरदूँ[८]।
कलीम[९] जब ज़ेरे-ख़ाक होगा, कलामको बरतरी[१०] मिलेगी ॥
किसीको इसमें नहीं है घाटा, अदबका[११] है 'जोश' नक़्द सौदा।
गड़ा तो पैग़म्बरी मिलेगी, सड़ा तो फिर दावरी[१२] मिलेगी ॥

—जोश मलीहाबादी

एक महाजरीन[१३] दोस्तसे

तेरी गरीबीका क्या मदावा[१४] कि तू है अहसासका[१५] सताया।
रहा अगर तेरा ज़हन[१६] मुफ़लिस तो हर जगह मुफ़लिसी मिलेगी ॥
ख़ला-ए-ज़हनीको[१७] अपने पुर कर[१८], नहीं तो जीना भी होगा दूभर।
यह जेबे-फितरत[१९] रही जो ख़ाली तो सारी दुनिया तही[२०] मिलेगी ॥
वतनको तू छोड़ दे मगर, क्या, ग़मे-वतन तुझको छोड़ देगा ?
वोह साज़की[२१] हो, कि मतरुबाकी[२२] हरइक सदा दुखभरी मिलेगी ॥
वहाँ जो अहलेवतन मिलेंगे तो वोह भी तसवीरे-ग़म मिलेंगे।
अदा-अदा गमज़दा मिलेगी, नजर-नजर शबनमी[२३] मिलेगी ॥

---

[१]नवयुगके कवि; [२]जिन्दगी; [३]महान् अपराध; [४]दीपक; [५]प्रकाश-धन; [६]सरोद, [७]बेआवाज; [८]आकाशके नीचे; [९]शाइर, लेखक; [१०]श्रेष्ठता; [११]साहित्यका; [१२]जन्नतकी न्यायाधीशी; [१३]देश छोड़नेवाले (पुरुषार्थी), [१४]उपाय इलाज; [१५]घटिया मनोवृत्तिका; [१६]मनोभाव; [१७]मानसिक गड्ढेको, [१८]भर, [१९]मनकी जेब; [२०]खाली; [२१]वाद्यकी; [२२]सगीतज्ञकी; [२३]भीगी हुई।

यहाँका जब तजकरा छिड़ेगा, तो उन फ़िज़ाओंमें[1] दम घुटेगा।
बुझी-बुझी होगी शमअ़ दिलकी, धुआँ-धुआँ ज़िन्दगी मिलेगी॥
न कर मुझे मौतके हवाले, वतनसे ऐ दूर जानेवाले!
यहाँ तड़पती हैं आज लाशें, यहीं पै कल ज़िन्दगी मिलेगी॥
यह ज़र्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ़[2] करती हुई मिलेगी॥
नया ज़माना, नया सवेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी हयात[3] इक दूसरी मिलेगी॥

—नज़ीर बनारसी

मंज़िलतक

अभी तो गेतीकी[4] ज़ुल्फ़े-पेचाँको और भी बरहमी[5] मिलेगी।
अभी तो इन्सानियतको हमदम! कुछ और शरमिन्दगी मिलेगी॥
अभी तो दामनपै आदमीयतके और धब्बे हैं पड़नेवाले।
अभी हयाते-बशरके[6] होंटोंको और भी तिश्नगी[7] मिलेगी॥
ख़लूस[8] सोयेगा और कुछ दिन अभी तो मुँह ढाँपकर कफ़नसे।
अभी तो महरो-वफ़ाके[9] जज़्बेको[10] हर घड़ी मौत ही मिलेगी॥
अभी तो चेहरोंपै और उभरेंगी ग़मकी पुरहौल झाइयाँ-सी।
अभी जबीनोंपै[11] अहले-गुलशनके और भी बेबसी मिलेगी॥
कुछ और ख़ूने-जिगरसे गुलकारियाँ-सी होंगी हर आस्तीपर।
अभी कुछ और आँख हर बशरकी इसी तरह शबनमी[12] मिलेगी॥

---

[1]वातावरणमे; [2]प्रदक्षिणा; [3]जिन्दगी; [4]संसाररूपी प्रेयसीकी; [5]परेशानी; [6]मनुष्यजीवनके; [7]पिपासा; [8]स्नेह, मित्रता, [9]नेकी-भलाईकी; [10]भावनाओको; [11]मस्तकोपै; [12]भीगी हुई।

इन्हीं मसाइबकी[1] गोदमें पल रही है 'नाज़िश' मसर्रतें[2] भी।
इसी जहन्नुमकदेसे[3] इक रोज राह फ़िरदौसकी[4] मिलेगी॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

ग़ज़लोंके चन्द अशआर

फ़सुर्दगीकी[5] तहोंमें बाकी हरारते-ज़िन्दगी मिलेगी।
निगाहने दूरतक कुरेदा तो आग दिलमें दबी मिलेगी॥
हयाते-ताज़ापै[6] मरनेवाले! हयाते-ताज़ा है मौत ही से।
यह ज़िन्दगी पहले ख़त्म करले, तो फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
न भूल ऐ तारके-मुहब्बत[7]! कि तर्के-उल्फ़त भी इक ख़लिश[8] है।
जो फाँस तूने निकाल दी है, वोह फाँस दिलमें लगी मिलेगी॥
ज़रा-सी ख़ातिर शिकस्तगीकी[9] नहीं है बरदाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥

—सीमाब अकबराबादी

वोह आप आयेंगे वक़्ते-आख़िर इजाज़ते-दीद[10] भी मिलेगी।
किसे ख़बर थी कि मौत ही में हलावते-ज़िन्दगी[11] मिलेगी॥
तलाशकी हद तो ख़त्म कर दे, हसूले-मकसदकी फ़िक्र क्या है?
जहाँ कदम लड़खड़ाये थककर वहीं यह दौलत पड़ी मिलेगी॥
कमरको कसले तो मुन्तज़िर बन,[12] कि जिसदम होगी तलब[13] अचानक।
न वक़्फ़ा[14] इक साँसका रहेगा, न फ़ुरसत इक बातकी मिलेगी॥

---

[1]मुसीबतोंकी, [2]ख़ुशियाँ; [3]नरकसे; [4]स्वर्गमार्गकी; [5]मुर्झाहटकी; [6]नवजीवनपै, [7]प्रेम-त्यागी, [8]चुभन; [9]पराजयताकी, [10]दर्शनोंकी आज्ञा; [11]जीवन-मिठास; [12]प्रतीक्षा करनेवाला; [13]बुलाहट, [14]अन्तर।

सम्भलके रह, है जो रिन्दे-मशरब,[1] हवास खोये तो खो दिया सब।
न होगा लुत्फ़े-ख़ुदी[2] ही हासिल, न लज्जते-बेखुदी[3] मिलेगी॥
कठिन मुहब्बतकी मंज़िलें हैं और आगे बढ़ना है बे सहारे।
जब 'आरज़ू' आप मिट चुकेंगे तो आरज़ू-ए-दिली[4] मिलेगी॥

—आरज़ू लखनवी

अज़ीज[5] जब होगा बाग़बाँको चमनका हर गुल हर आशियाना।
उरूस[6] जैसे हो एक शबकी[7] बहार ऐसी सजी मिलेगी॥
ज़मीरे-शबसे[8] तुलूअ[9] होगा इक आफ़ताबे-निज़ामे-ताज़ा[10]।
नई नवेली सहरकी[11] किरनोंसे खेलती जिन्दगी मिलेगी॥
बजाए हुब्बेवतन है बाहम चलन बग़ावत कि दुश्मनीका।
यही जो पायाने-हुर्रियत[12] है, तो ख़ाक आसूदगी[13] मिलेगी॥
बुने हैं नफ़रतने जाल क्या-क्या, फ़रेबो-मकरो-दग़ा-ओ-शरके।
यह जिनके गुन हैं, यह उनके दावे कि जल्द ही शान्ति मिलेगी॥
जो नेकियाँ हैं शिकस्तख़ुरदा[14] तो सरनगूँ रास्तीका परचम[15]।
यही जो नक़्शा है, आदमीयत कफ़नमें लिपटी हुई मिलेगी॥
यही जो है द्वन्द ख़्वाहिशोंका यही जो है गन्दगीकी पूजा।
मुहज़्ज़ब[16] इन्साँकी वहशियोंसे कड़ी-कड़ीसे जुड़ी मिलेगी॥

—असर लखनवी

निशाने-सोज़े-दरूँ[17] हमारा, मिटा नहीं है न मिट सकेगा।
अगर्चे दिल जलके रह गया है, कुछ आग फिर भी दबी मिलेगी॥

—वहशत कलकतवी

---

[1]सच्चा मद्यप; [2]अहम-आनन्द; [3]आत्मलीनताका सुख; [4]हृदयाभिलाषा; [5]प्रिय; [6]दुल्हन; [7]रातकी; [8]अन्त करण रूपी रात्रिसे; [9]उदय; [10]नव-व्यवस्था-सूर्य; [11]प्रात कालकी; [12]स्वतन्त्रताकी सीमा; [13]सुख-शान्ति; [14]पराजित; [15]भलाईकी ध्वजा झुकी हुई; [16]भद्र पुरुषोकी; [17]अन्तरग आग।

नक़ाब रुख़से उठायेंगे वोह, ज़रूर महशरमें आयेंगे वोह।
मगर इसे पहले सोच लूँ मैं, इजाज़ते-दीद[1] भी मिलेगी॥

—नूह नारवी

अगर मैं नाकामे-दीद मर जाऊँ अपने कूचेमें ढूँढ़ लेना।
वहीं कहीं ख़ाको-ख़ूँमें ग़लताँ[2] मेरी तमन्ना पड़ी मिलेगी॥
ब-होश-ह-वास ऐ मुसाफ़िरे-राहे-ज़िन्दगी ! यह वोह रास्ता है।
जहाँ तुझे रहबरीकी[3] सूरतमें जा-बजा रहज़नी[4] मिलेगी॥

—मानी जायसी

ख़ुदाकी रहमतको पारसा अब, अज़ाबे-दोज़ख़ समझ रहे हैं।
उन्हें गुमाँतक न था कि जन्नत गुनाहगारोंको भी मिलेगी॥

—जोश मल्सियानी

चराग़े-सज्दा जलाके देखो, है बुतकदा दफ़्न ज़ेरे-काबा[5]।
हदूदे-इस्लाम ही के अन्दर यह सरहदे-काफ़िरी मिलेगी॥
हदूदे-दैरो-हरमसे हटकर झुका जबींने-नियाज़ अपनी।
ग़रज़से जब बेनियाज़ होगा, तो उजरते-बन्दगी मिलेगी॥
है जौरे-सैयादका ही सदक़ा चमनकी हंगामा आफ़रीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होंगी वहीं कहीं ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सिराज लखनवी

न ख़ौफ़े-तूफ़ाँ न शौक़े-साहिल ख़ुशामदें नाख़ुदा करें क्यों।
जो इन थपेड़ोंको सह गये हम तो ख़ुद नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—महवी लखनवी

---

[1]देखनेकी आज्ञा; [2]सनी हुई; [3]पथ-प्रदर्शकी; [4]डाकेजनी; [5]जहाँ पहले मूर्तियाँ थी, उन्हीको तोडकर वहाँ काबा बना था, उसी ओर संकेत है।

जो राज़ आज़ादिए-वतनमें निहाँ था कौन उसको जानता था।
कि इक तरफ़ ख़्वाजगी[1] मिलेगी तो इक तरफ़ बन्दगी[2] मिलेगी॥
यही है जमहूरियतके[3] मानी तो फिर ग़ुलामीका क्या गिला है।
किसीको ग़म होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[4] मिलेगी॥
जो मुल्कमें इनक़लाब आया, तो क़त्लो-ग़ारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले, कि इक नई जिन्दगी मिलेगी॥

—सरीर काबरी मीनाई गयावी

किसे गुमाँ[5] था के ज़ुअ़मे-ख़ालिक़ की बावजूद[6] आदमे-हज़ीको।[7]
न इशरते-ख़्वाजगी[8] मिलेगी, न लज़्ज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
अभी कहाँ आदमीकी मंजिल, अभी तो ख़ुद आदमी ही गुम है।
यह अहदे-हाज़िर तबाह हो ले, तो मंजिले-आदमी मिलेगी॥
ख़िरदको[9] अपनी जुनूँ बनाकर जो ज़िन्दगीको ख़िराज[10] देगा।
यहाँ उसी साहबे-ख़िरदको जुनूँकी पैग़म्बरी मिलेगी॥
यह ना उम्मीदी यह बे यक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्हीं अँधेरोंको पार करके यक़ीनकी रोशनी मिलेगी॥
हज़ार हो राख कल्बे-'साग़र' मगर इसी राखमें है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शररकी[11] दुनिया दबी मिलेगी॥

—साग़र निज़ामी

सुना है दीवानगाने-उलफ़तको[12] दादे-आशुफ़्तगी[13] मिलेगी।
अगर यह सच है तो ज़ुल्फ़ेगेतीको[14] और कुछ बरहमी[15] मिलेगी॥

---

[1]पूज्यता (नेतागिरी); [2]गुलामी (सर झुकानेकी मजबूरी); [3]प्रजातन्त्रताके; [4]स्थायी सुख; [5]विश्वास, ख़याल; [6]ईश्वरके भरोसेके होनेपर भी; [7]गमगीन आदमीको; [8]आदरका सुख, मालिकाना आनन्द; [9]अक़्लको [10]कर, टैक्स; [11]चिनगारियोकी; [12]प्रेमोन्मत्तोको; [13]परेशानयोंकी दाद, प्रशसा; [14]ससाररूपी प्रेयसीकी जुल्फोको; [15]परेशानी।

गरूबे-ख़ुरशीदपर[1] रहेगा फ़रोगे-शबका[2] मदार[3] कबतक ?
यह सोचता हूँ कि इन सितारोंको कब नई ज़िन्दगी मिलेगी ॥
वोह सुबहे-जन्नत कि जिसने ज़ाहिदको दीनो-दुनियासे खो दिया है।
कहीं मिलेगी तो मैकदेका तवाफ़[4] करती हुई मिलेगी ॥
यही नशेमन तिरी निगाहोंको जिसने महदूद कर दिया है।
इसी नशेमनके आईनेमें क़फ़सकी तसवीर भी मिलेगी ॥
कहाँ-कहाँ हमसफ़र रहे हम, वही है बेगानगीका आलम।
किसे ख़बर थी कि हर तमन्ना, ब-सूरते-अजनबी मिलेगी ॥
ग़रज़-परस्तोंकी दोस्तीके फ़रेब सब खुल चुके हैं लेकिन।
'रविश' यह दुनिया क़दम-क़दमपर ख़ुलूसकी[5] मुद्दई मिलेगी ॥

—रविश सद्दीक़ी

इस अंजुमनमें शरीक होनेसे पहले ही मैं यह जानता था।
नवाज़िशें दूसरोंकी किस्मत, मुझे फ़क़त बरहमी मिलेगी ॥
अज़लके दिन जब बिनाए-हस्ती रखी थी, ऐलान कर दिया था।
सरोंको सौदा[6] नसीब होगा दिलोंको आशुफ़्तगी[7] मिलेगी ॥
हुए थे जिस दिन असीर[8] हम सब चमनके आसार कह रहे थे।
तुम आओगे जब कफ़ससे छुटकर बहार जाती हुई मिलेगी ॥

—माहिरउलक़ादिरी

कदम बढ़ाओ ख़िज़ाँ नसीबो ! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर हैं अपनी।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी ॥
उस आदमे-नौकी आमद-आमद, है जिसके इदराककी[9] दमकसे।
समाजको बाँकापन मिलेगा, हयातको[10] दिलकशी मिलेगी ॥

—नरेशकुमार शाद

---

[1]सूर्यास्तपर; [2]रात्रिके आनेका, [3]आसरा, भरोसा; [4]परिक्रमा, [5]निष्कपटताकी हामी; [6]दीवानगी; [7]परेशानी; [8]बन्दी; [9]अक़्लकी; [10]जीवनको।

नई लहर लाई थी सन्देशा, कि अब नई जिन्दगी मिलेगी।
किसे ख़बर थी हयाते-ताजा लहूमें लिथड़ी हुई मिलेगी॥
उदास चेहरे, हज़ी-निगाहें, फ़सुर्दा दिल और सिसकती रूहें।
नये ज़मानेमें ऐ मुसाफ़िर! तुझे हर इक शै नई मिलेगी॥
नये-नये रहनुमा[1] फ़रेबे-ख़ुद ऐतमादीमें[2] घिर गये हैं।
निगाहे-मंजिल-शनास कहिए, जिसे वोह भटकी हुई मिलेगी॥
न उठा सका बार नस्ले-आदमसे जिन्दगीकी नज़ाकतोंका।
किसी नये क़द्र-आश्नाये-हयातको जिन्दगी मिलेगी॥
गुज़र सका तू अगर तुलू-ओ-ग़रूबे-हस्तीकी मंज़िलोंसे[3]।
तो फिर यही जिन्दगी तेरी ठोकरोंमें इक दिन पड़ी मिलेगी॥

—मंज़र सद्दीक़ी

थकी हुई सूरतोंसे जिस वक़्त मलगजी चादरें हटेंगी।
तो दश्ते-ग़ुरबतके क़ाफ़िलोंमें भी रातभर चाँदनी मिलेगी॥
ख़बीस रूहें[4] अँधेरे जंगलमें, गर्म शोलोंसे खेलती हैं।
चला है बहका हुआ मुसाफ़िर कि उस तरफ रोशनी मिलेगी॥

—शफ़ीक़ जौनपुरी

रहे-वफ़ामें[5] फ़ना जो होगा, उसे नई जिन्दगी मिलेगी।
गुज़र मक़ामे-ख़ुदीसे,[6] पहले हक़ीक़ते-बेख़ुदी[7] मिलेगी॥
यह चन्द लमहे जो मुग़तनम[8] हैं तलाशे-साहिलमें[9] खो न इनको।
डुबोदे तूफ़ाने-ग़ममें कश्ती, यहीं कुछ आसूदगी[10] मिलेगी॥
मुझे डराता है बाग़बाँ क्यों तू बर्क़े-ख़ातिफ़की यूरिशोंसे[11]।
जलेगा जलने दे आशियाँको, चमनको तो रोशनी मिलेगी॥

—अलम मुज़फ़्फ़रनगरी

---

[1]नेता; [2]अहमन्यताके जालमे; [3]जीवनके उतार-चढावकी मंज़िलोसे; [4]अपवित्र आत्माएँ; [5]नेक मार्गमे; [6]अहम्भावसे; [7]आत्मलीनता; [8]गनीमत समझ; [9]किनारेकी खोजमे; [10]शान्ति-चैन; [11]बिजलीके भयानक हमलोसे।

नहीं हूँ मायूस[1] जिन्दगीसे, मुझे यक़ीं है कि इक-न-इक दिन।
अलमके[2] तीरह उफ़क़पै[3] मुझको, शुआए-उम्मीद[4] भी मिलेगी॥

—ज़िया फ़तेहाबादी

यह बज़्मे-अहबाब[5] है यहाँ ऐ दिले-परीशाँ! ख़ुलूस कैसा?
यहाँ तो हर परदये-वफ़ामें छुपी हुई दुश्मनी मिलेगी॥
हो जिसकी अंजामपर[6] नज़र और उसपै भी मुसकरा रही हो।
रियाज़े-आलममें[7] तुझको ऐ दिल; कहीं न ऐसी कली मिलेगी॥

—जगन्नाथ आज़ाद

ग़मे जहाँ-ओ-ग़मेमुहब्बत, बहर प्याला जुदा है लेकिन।
मज़ाक़े-रिन्दीमें पुख़्तगी हो, तो कैफ़ियत एक-सी मिलेगी॥
'शमीम' आसाँ नहीं ख़ुशीको, ग़मे-ज़मानासे छीन लेना।
हज़ार दिल आँसुओंमें डूबेंगे तब कहीं इक हँसी मिलेगी॥

—शमीम करहानी

अगर न हो दिलमें सोज़[8] पिन्हाँ[9] नज़रको क्या रोशनी मिलेगी?
ज़मीन उगलेगी चाँद-सूरज मगर वही तीरगी[10] मिलेगी॥
ख़ुशी कहाँ है जहाने-ग़ममें? मिली तो इतनी ख़ुशी मिलेगी।
लबोंपै खेलेगी मुसकराहट नज़रमें अफ़सुर्दगी[11] मिलेगी॥
जो क़ैदो-बन्देचमनसे[12] घबराके आशियानेको छोड़ देगा।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा वही लचकती हुई मिलेगी॥

—निसार इटावी

---

[1]निराश; [2]दुःखके; [3]अँधेरे आकाशपर; [4]आशा-किरण; [5]इष्ट-मित्रोंकी गोष्ठी; [6]परिणामपर; [7]संसारमें; [8]दर्द; [9]छुपा हुआ; [10]अँधेरी; [11]मुर्झायापन; [12]चमनकी बन्दिशरूपी क़ैदसे।

हमारी आँखोंमें हुस्न भरकर, वोह ख़ुद ही हमसे झिझक रहे हैं।
किसीकी रंगी अदाके सदक़े, किसीमें यह सादगी मिलेगी?

—वफ़ा बराही

क़फ़ससे छुटनेपै शाद थे हम कि लज़्ज़ते-ज़िन्दगी मिलेगी।
यह क्या ख़बर थी बहारे-गुलशन लहूमें डूबी हुई मिलेगी॥
वही जहालतकी बादशाही, वही ज़लालतकी कजकलाही[1]।
जो बा-ग़रज़ दोस्ती मिलेगी, तो बेसबब दुश्मनी मिलेगी॥
नई सहर[2] के हसीन सूरज, तुझे ग़रीबोंसे वास्ता क्या?
जहाँ उजाला है सीमो-ज़रका[3] वहीं तेरी रोशनी मिलेगी॥
वोह दिन भी थे जब अँधेरी रातोंमें भी क़दम राहे-रास्तपर थे।
और आज जब रोशनी मिली है तो ज़ीस्त भटकी हुई मिलेगी॥
जिन अहले-हिम्मतके रास्तोंमें बिछाये जाते हैं, आज काँटे।
उन्हींके ख़ूने-जिगरसे रंगीं चमनकी हर इक कली मिलेगी॥
वोह हम नहीं हैं कि सिर्फ़ अपने ही घरमें शमएँ जलाके बैठें।
वहाँ-वहाँ रोशनी करेंगे, जहाँ-जहाँ तीरगी[4] मिलेगी॥

—अब्बुल मजाहिद ज़ाहिद

वोह हुस्न हो या शबाब तेरा, वोह नाज़[5] हो या नियाज़[6] मेरा।
सिवाय उल्फ़तके इस जहाँमें हरेक शै आरज़ी[7] मिलेगी॥

—शफ़ीक़ कोटी

सितमतराज़ी-ए-दस्ते-गुलचीं,[8] तग़ाफ़ुले-बाग़बाँ[9] सरासर।
यही रविश है तो क्या चमनमें, शगुफ़्ता कोई कली मिलेगी॥

—तमन्ना बिजनौरी

---

[1]बाँकी तिर्छी टोपी; [2]सुबहके; [3]चाँदी, धनका; [4]अँधेरी; [5]अभिमान; [6]नम्रता; [7]अस्थायी; [8]फूल तोड़नेवालेका ज़ुल्म; [9]मालीकी उपेक्षा।

मक़ामे-जब्रो-करमसे[1] आगे, इक और मंज़िल भी है कि जिसमें।
न काहिशे-गमपै[2] बस चलेगा, न लज़्ज़ते-सरखुशी[3] मिलेगी॥
—महज़ूँ नियाज़ी

बंधी हुई लौसे इस दियेकी जलेंगे कितने चराग देखो।
मेरे नशेमनकी आग ही से चमनको अब रोशनी मिलेगी॥
—बिस्मिल सिद्दीक़ी लखनवी

अजीब है गरदिशे-ज़माना, हक़ीक़तें बन गईं फ़साना।
जिन्हें था दावाए-रहनुमाई, उन्हींमें अब गुमरही मिलेगी॥
'नसीम' इस दौरके सियासतज़दह ख़ुदाओंसे बचके रहना।
कि दिलपै इक हाथ बहरे-तसकीं[4] तो दूसरेमें छुरी मिलेगी॥
—नसीम रायपुरी

ग़मे-मुहब्बतका ज़िक्र ही क्या, ख़ुशीके लमहे न रास आये।
यह सब फ़रेबे-ख़याल ही था, कि तुमसे मिलकर ख़ुशी मिलेगी॥
—सैफ़ भुसावली

उठा सके आदमी तो पहले नज़रसे अपनी नक़ाब उठाये।
ज़माने भरकी तजल्लियोंसे नक़ाब उलटी हुई मिलेगी॥
—नवाब झाँसवी

दयारे-गुरबतके यह नशेबोफ़राज़ हिम्मत-शिकन हैं लेकिन।
यही वोह पगडंडियाँ हैं जिनसे कभी तो राहे-ख़ुशी मिलेगी॥
—रौनक दक्कनी

यह किसको मालूम था कि कल थी जो ज़िन्दगी-ज़िन्दगीकी ज़ामिन।
वोह ज़िन्दगी आज ज़िन्दगीका लहू बहाती हुई मिलेगी॥
—कोकब उलक़ादिरी

---

[1]कृपा-अत्याचारसे; [2]गमकी कमीपै; [3]शराबका आनन्द; [4]धैर्य बँधानेके लिए।

ख़ुदा-फ़रोशीकी[1] हैं दुकानें, यह मदरसे और ख़ानक़ाहें[2]।
यक़ीनो-ईमाँकी क़ीमतोंपर यहाँ मताये-ख़ुदी[3] मिलेगी॥
ग़रज़के बन्दों, ज़रूरतोंके पुजारियोंका है यह ज़माना।
क़दम-क़दमपर यहाँ नज़रको ख़ुलूसे-दिलकी[4] कमी मिलेगी॥
—अनवर साबरी

जमील[5] ज़ौक़े-फ़ना[6] अगर है तो जाँ-फ़िज़ाँ मौत भी मिलेगी।
तुझे मुबारक हो मरनेवाले कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
है मुनहसिर[7] शौक़े-जुस्तजूपर सुबकरवी[8] हो कि तेज़गामी।
हरेक मुसाफ़िरको अपनी मंज़िल क़रीब भी दूर भी मिलेगी॥
है शर्त सज्देसे बेनियाज़ी[9] वगर्ना मालूम सरफ़राज़ी।
जबींसे धोले जो हाथ उसको इजाज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
हिसाब उसका है कुछ अनोखा शुमार उसका है कुछ निराला।
वहीं जफ़ा कामयाब होगी, जहाँ वफ़ाकी कमी मिलेगी॥
—विश्वेश्वरप्रसाद मुनव्वर लखनवी

मज़ाक़े-उलफ़त लतीफ़ होगा तो दिलकशा होगी शामेग़म भी।
अँधेरे उगलेंगे चाँद-तारे, हरइक तरफ़ चाँदनी मिलेगी॥
अदब-नवाज़ाने-दहर[10] 'तुर्फ़ा' करें अदीबोंपर भी नवाज़िश[11]।
अदीब ज़िन्दा अगर रहेंगे, अदबको भी ज़िन्दगी मिलेगी॥
—तुर्फ़ा क़ुरैशी

तुम्हींने ग़मसे मुझे नवाज़ा, तुम्हींसे मुझको ख़ुशी मिलेगी।
जबींको जिस दरने दाग़ बख़्शा उसीसे ताबिन्दगी[12] मिलेगी॥

---

[1]ईश्वर-बिक्रीकी; [2]मस्जिद, दरगाहें, [3]अहमन्यताकी दौलत; [4]निष्कपट हृदयकी, [5]हसीन; [6]मृत्युका चाव; [7]दार-मदार, [8]मन्द चाल; [9]निष्काम उपासना; [10]साहित्य-प्रेमी श्रीमत; [11]साहित्यिकोका सम्मान करें; [12]रोशनी।

इसी भरोसेपै कट रही है बुरी-भली जिन्दगी अभी तक।
जहाँसे बेदाद हो रही है, वहींसे फिर दाद भी मिलेगी॥

—नजर सहवारवी

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोसे कह रही है शफ़क़की सुर्खी[१]।
न अब बहाओ कोई भी आँसू तुम्हें नई रोशनी मिलेगी॥
कोई मजाहिद[२] तो होगा पैदा, जो खूँसे सींचेगा अपना गुलशन।
उसीके खूँसे ख़िज़ाँ रसीदा चमनको फिर जिन्दगी मिलेगी॥

—जमनादास अख़्तर

उजड़के आये है जो वतनसे उन्हें जरा इक नजर तो देखो।
अभीतक उन अहले-ग़मकी आँखोंमें आँसुओंकी नमी मिलेगी॥

—रामकृष्ण मुज़्तर

अमल हरइक नेको-बद तुम्हारा, सदा-ए-गुम्बद है याद रक्खो।
करोगे नेकी मिलेगी नेकी, बदी करोगे बदी मिलेगी॥
इसी भरोसेपै गामजन[३] हूँ, तेरी मुहब्बतके रास्तेपर।
कहीं तो तेरा निशाँ मिलेगा, कभी तो तेरी गली मिलेगी॥
हजार नाकामियाँ हों 'नश्तर' हजार गुमराहियाँ हों लेकिन।
तलाशे-मंजिल अगर है दिलसे तो एक दिन लाजिमी मिलेगी॥

—हरगोविन्दसिंह नश्तर हलगामी

यही दरिन्दे उठेंगे इक रोज सारे आलमकी रहबरीको?
"इन्ही अँधेरोंसे बज्मेगेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी"॥

मशहूद मुफ़्ती

इन आस्तानोंपै मत झुको तुम, यह शाही ईवाँ[४] है शाने-नख़वत[५]।
ख़ुलूसो-उल्फ़तके[६] बदले तुमको, यहाँ फ़क़त बरहमी[७] मिलेगी॥

—साज बिलगरामी

---

[१]सन्ध्याकालीन सूर्यलालिमा; [२]धर्मपर मरनेवाला; [३]चल रहा हूँ; [४]शाही महल, [५]घृणाकी शान लिए हुये, [६]स्नेह-प्यारके; [७]परेशानी-तिरस्कार।

जबींने-इफ़लास[1] ख़म[2] न होगी, अब अहले दौलतके आस्ताँपर[3]।
नया मज़ाक़े-सजूद[4] होगा, नई रहे-बन्दगी मिलेगी॥

—ज़फ़र आज़मी

जिसे न काबेसे वास्ता हो, न जिसको मतलब हो बुतकदेसे।
मेरी जबीने-नियाज़में[5] ऐसी रफ़अ़ते-बन्दगी[6] मिलेगी॥
न देखो नक़्शो-निगारे-हस्ती[7] कि आदमीयत यहाँ है सस्ती।
उरूजे-इन्सानियत कहाँ अब तो पस्ती-ए-आदमी मिलेगी॥

—प्रेम देहलवी

वोह आग जिसको बुझा दिया था, तुम्हारी बेइल्तफ़ातियोंने[8]।
वोह आग अबतक बुझी नहीं है, वोह आग दिलमें दबी मिलेगी॥
ग़मे-जहाँसे फ़राग़[9] मिलता, तो हम ख़ुदासे यह पूछ लेते।
जहाँके मालिक तेरे जहाँमें कभी हमें भी ख़ुशी मिलेगी॥

—नैयर सीमाबी

---

[1]दरिद्रताका मस्तक; [2]नही झुकेगी; [3]धनवानोके दरपर; [4]उपास्य नया होगा; [5]नम्र मस्तकमे; [6]उपासनाकी शक्ति; [7]जीवनसुखके चिह्न; [8]अकृपाओने; [9]अवकाश, फुरसत।

पुराने वक्तोमे जब कि बिजली नही थी, मुशाअ्रोमे शुअ्रा ऊँची

मौजूदा मुशाअ्रे

मसनदपर श्रोताओंकी तरफ मुँह करके अर्द्ध चन्द्राकार अपने-अपने मर्त्तबेके हिसाबसे बैठते थे और शमअ सामने रखी जानेपर अपनी गज़ल पढते थे ।[1]

वर्तमान युगमे ढग बदल गया है। अब मुशाअरोकी व्यवस्था आधुनिक व्याख्यान-सभाओ-जैसी होती है। श्रोता मचके सामने और शाइर मचपर बैठते है; और मीर मुशाअ्रेके आदेशपर माइकपर जाकर अपना-अपना कलाम सुनाते है।

कभी यह मुशाअरे तरही (समस्यापूर्ति) कभी गैर तरही, कभी सिर्फ गज़लोके, कभी सिर्फ नज्मोके और अक्सर मिले-जुले होते है। गैर तरही मुशाअ्रोकी नीव इसलिए डाली गई थी कि शाइरका बेहतर-से-बेहतर कलाम सुना जा सके। तरही मुशाअरोमे एक खामी तो यह थी कि बाज दफा फुरसत न मिलनेकी वजहसे अच्छे शाइर मिसरा तरहपर गजल नही कह सकनेकी वजहसे मुशाअरोमे शिरकत नहीं फर्माते थे; और उनकी गैर मौजूदगी बहुत अखरती थी। दूसरी खामी यह थी कि शाइर मिसरेपर गिरह लगानेमे पूरी शक्ति लगा देते थे और प्राय. मिलती-जुलती एक-सी ग़जलोको सुनते-सुनते लोग ऊब जाते थे।

गैर तरही मुशाअरोके रिवाजसे जहाँ यह लाभ हुआ कि हर शाइरसे जुदा-जुदा रगका कलाम सुननेको मिलता है, वहाँ यह नुकसान भी पहुँचा कि अक्सर शाइर पचासो दफाका मुशाइरोमे सुनाया हुआ, और कई-कई पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित कलाम पढते रहते है।

---

[1]इस तरहके कई मुशाअ्रे १९२१-२२ ई० मे दिल्लीके हिन्दुरावके बाडेमे देखनेका मुझे भी इत्तफाक हुआ है।

भारत और पाकिस्तानके भिन्न-भिन्न रेडियो-स्टेशनोसे भी मुशाअ़रे मासिक-पाक्षिक ध्वनित होते रहते है। कभी यह अपनी ओरसे मुशाअ़रोका आयोजन करते है और कभी पब्लिक मुशाअ़रोको प्रसारित करते रहते है।

इन मुशाअ़रोसे यह फायदा पहुँचा कि घटे-डेढ-घटेके अर्सेमे ही अच्छे-अच्छे शाइरोंका कलाम घर बैठे हुए आरामसे सुननेको मिल जाता है और परिवारके सभी सदस्य लुत्फअन्दोज हो सकते है।

हज़रत 'सरवर' तोसवी साहबने एक नया कमाल और ईजाद किया है कि वे बडे-बडे मुशाअ़रोंकी रनिग कमेट्री अपने 'शाने-हिन्द' अख़बारमे प्रकाशित करते रहते है। समूचे मुशाअ़रेका हू-ब-हू ऐसा ख़ाका पेश करते है कि वह चलचित्रके समान नजरोके सामने नाचने लगता है और पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि हम स्वय मुशाअ़रेमे अच्छी-से-अच्छी जगह बैठे हुए यह सब देख रहे है।

यूँ तो आप स्वतन्त्रता, गालिब, हाली, इकबाल, चकबस्त, बर्क आदि दिवसोपर हुए बृहत् मुशाअ़रो और भारत-पाकिस्तानके मिले-जुले मुशाअ़रोकी न जाने कितनी कमेण्ट्री प्रकाशित कर चुके है। हम सिर्फ यहाँ एक मुशाअ़रेका तनिक-सा अश बतौर बानगी दे रहे है। यह मुशाअ़रा पटनेमे बिहार-रियासती-उर्दू-कान्फ्रेसके तत्त्वावधानमे १४ मई १९५१ को हुआ था। जिसे पटनेके रेडियो स्टेशनने भी रात्रिके ९॥ बजेसे ११ बजेतक प्रसारित किया था। हमने भी यह मुशाअ़रा रेडियोपर सुना था। उसी मुशाअ़रेकी हज़रत 'सरवर' तोसवी द्वारा की गई कमेण्ट्रीकी एक झाँकी देखिए—

"अब ऐलान हो रहा है कि जनाब जगन्नाथ 'आजाद' अपना कलाम पेश करेगे। लीजिए 'आज़ाद' साहब अपना पेटेण्ट लिबास पहिने माइक पर तशरीफ़ ले आये है, और दो-तीन कताआत सुनानेके बाद आपने मज-

मूअय्यें कलाम 'सितारोसे ज़र्रोंतक' मे-से मतवूआ गज़ल पढ़नी शुरू की है। मतला फर्माते है—

मुहब्बतमें उन्हें अह्ले-नज़र[1] कामिल समझते हैं।
जो इस तूफानकी हर मौजको साहिल समझते हैं॥

आज़ाद साहव वहुत अच्छा पढते है, इसलिए दाद लेनेमे उन्हें वहुत आसानी रहती है। शेर फर्मा रहे है—

कभी वोह दिन थे अपने दिलको हम अपना न कहते थे।
मगर अब हर वशरके[2] दिलको अपना दिल समझते हैं॥
वोह फ़न[3] जो ताब ला सकता न हो दर्दे-ज़मानेकी[4]।
हम ऐसे फ़नको इक अफ़सानये-वातिल[5] समझते है॥
वही इन्सान साहिलपर[6], जिन्हें तूफ़ाँका धोका हो।
अगर अड़ जायें तूफ़ानोंको भी साहिल समझते हैं॥

इस शेरपर 'आज़ाद' साहवको अच्छी दाद दी गई है और आप फ़र्मा रहे है—

हमींने ऐ मुहब्बत क़द्र पहचानी है कुछ तेरी।
तुझे तूफ़ाँ, तुझे किश्ती, तुझे साहिल समझते हैं॥

'आज़ाद' साहव काफी दाद पानेके वाद अपनी जगह पर तशरीफ़ ले आये है। अव हजरत रविश सद्दीकी अपने खास अन्दाज़से मुसकराते हुए माइकके सामने तशरीफ ले आये है, और फर्मा रहे है 'नज्मका उनुवान (शीर्षक) है 'यादग वख़ैर', इरशाद हुआ है—

शामे-ग़ुरवत[7] ही में सुवहे-वतन[8] भूल गये।
हम तो हर ख़्वाबको[9] ऐ चर्ख़े-कुहन[10] भूल गये॥

---

[1]पारखी; [2]मनुष्यके; [3]कला, ज्ञान; [4]दुनियाके दु.खकी; [5]कहानी मात्र; [6]किनारेपर; [7]यात्राकी सन्ध्या होते ही; [8]अपने देशका सुहावना प्रात.काल; [9]स्वप्नको; [10]आस्मान।

नख़वते-शेख़ो-बिरहमन[1] तो बजा[2] है लेकिन—
क्या हुआ, क्यों हमें, इसनामे-वतन[3] भूल गये॥

दादका एक रेला है कि थमनेमें नही आ रहा है। चुनाचे 'रविश' साहबसे यह शेर तीन-चार मर्त्तबा पढवाया गया है। इसके बाद इरशाद होता है—

जिन्दगी दश्त-नशीनीमें[4] गुज़ारी जिसने।
उसी वहशीको[5] ग़ज़ालाने-ख़तन[6] भूल गये॥
मशरबे-इश्क़के[7] आदाब[8] सिखाये जिसने।
उसी मैख़्वारको[9] रिन्दाने-कुहन[10] भूल गये॥

रविश साहबको बहुत ज्यादा दाद दी जा रही है और रविश साहब निहायत अच्छे अन्दाज़मे फ़र्मा रहे हैं—

ख़ारको[11] जिसने दिया शोल-ए-बरहमका[12] जलाल।
ख़ुद फ़रामोश[13] वोह एजाजे-सुख़न[14] भूल गये॥
नामुकम्मिल ही रही बरबादे-वतनकी रूदाद[15]।
आज सब तज़करे-ए-दारो-रसन[16] भूल गये॥

रविश साहबको निहायत अच्छी दाद दी जा रही है और हक भी यह है कि उनकी नज़्म काबिले-तारीफ़ है। फर्माते है—

दर्द था क़िस्सये-शब हाये-ग़ुलामी[17] जिनको।
वही ख़ुरशीदकी[18] पहली किरन ही भूल गये॥
क्या यह सब रंजो-मुहन[19] परदये-ग़ाफ़लत[20] है 'रविश'!
हम तो इस सोचमें सब रंजो-मुहन भूल गये॥

---

[1]शेख़-ब्राह्मणका द्वेष; [2]उचित; [3]वतनके प्रेमी; [4]घुमक्कड़पनमे; [5]दीवानेको; [6]जगली हिरन; [7]प्रेमके; [8]ढग; [9]मद्यपको; [10]पुराने शराबी; [11]काँटेको; [12]भडक उठनेवाली चिनगारीका आबा; [13]भूले हुए, [14]वाणीके जादूगरको, [15]कहानी; [16]सूली, फाँसीके वर्णन; [17]पराधीनता रूपी अँधियारीका दु ख; [18]सूर्य्यकी; [19]दु.ख, गम; [20]भूल, उपेक्षाके पर्दे।

जनाब 'रविश' साहब निहायत अच्छी दाद पानेके बाद अपनी जगहपर तशरीफ ले आये हैं और अब हजरत बालमुकुन्द 'अर्श' मलसियानी माइक पर तशरीफ ले आये है। मतला फर्माया है—

यह दौरे-ख़िरद[1] है, दौरे-जुनूँ,[2] इस दौरमें जीना मुश्किल है।
अंगूरकी मै के[3] धोकेमें जहर-आबका[4] पीना मुश्किल है॥

अर्श साहबको मतलेसे ही दाद मिलना शुरू हो गई है और आप फर्मा रहे है—

जब नाख़ुने-वशहत[5] चलते थे, रोकेसे किसीके रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानीयत,[6] सीते है तो सीना मुश्किल है॥

बस कुछ न पूछिए दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। दादका शोर कुछ कम हुआ तो 'अर्श' साहबने यह शेर दुबारा पढनेके वाद इरशाद फर्माया—

जो धरमपै बीती देख चुके, ईमाँपै जो गुजरी देख चुके।
इस रामो-रहीमकी दुनियामें इन्सानका जीना मुश्किल है॥

दाद उसी अन्दाजसे दी जा रही है और जनाब अर्श फर्मा रहे हैं—

इक सब्रके घूँटसे मिट जाती सब तिश्नालबोकी[7] तिश्नालबी[8]।
कम-जर्फ़ी-ए-दुनियाके[9] सदके[10] यह घूँट भी पीना मुश्किल है॥

वह शोला[11] नही, जो बुझ जाये, आँधीके एक ही झोकेसे।
बुझनेका सलीक़ा आसाँ है, जलनेका तरीका मुश्किल है॥

'अर्श' साहब मुशाअरेपर छा गये है और दाद है कि झोलियाँ भर-भर कर दी जा रही है। सुनिए अर्श साहब क्या फर्मा रहे है—

---

[1]अक्लका जमाना; [2]ऐ उन्मादके युग; [3]अगूरी शराबके; [4]ज़हरीला पानी [5]दीवानगीके नख; [6]मानव-हृदयकी विदीर्णता; [7]प्यासोकी; [8]प्यास; [9]नीच दुनियावालोकी; [10]कुर्बान; [11]चिनगारी।

करनेको रफ़ू कर ही लेंगे, दुनियावाले सब ज़ख़्म अपने।
जो ज़ख़्म-दिले-इन्साँ पै लगा, उस ज़ख़्मका सीना मुश्किल है ॥

इस शेरपर बहुत ज्यादा दाद दी गई है, और सुनिए अर्श साहब किस कदर बेहतरीन शेर फर्मा रहे हैं—

वोह मर्द नहीं जो डर जाये, माहोलके[1] ख़ूनी मंज़रसे[2]।
उस हालमें जीना लाज़िम है, जिस हालमें जीना मुश्किल है ॥

इस शेरने तो एक कयामत वरपा कर दी है, और दाद है कि अपनी इन्तहाको पहुँच गई है। कई बार यह शेर 'अर्श' साहबसे पढवाया जा रहा है, और हरबार दादमे इजाफा हो रहा है। काफी देरके बाद जब दादका रेला कुछ थमा तो अर्श साहब मक्ता फर्मा रहे हैं—

मिलनेको मिलेगा बिलआख़िर[3] ऐ 'अर्श' सकूने-साहिल[4] भी।
तूफ़ाने-हवादससे[5] लेकिन बच जाये सफ़ीना[6] मुश्किल है ॥

'अर्श साहबकी यह गजल बिला खौफोतरदीद हासिले-मुशाअरा रही और जिस कदर दाद 'अर्श' साहबको मिली, इस मुशाअरेमे किसीको नसीब न हुई।

लीजिए 'अनवर' साहब झूमते हुए माइककी तरफ जा रहे है। सुनिए मतला फर्मा रहे हैं—

अब भी यह तअल्लुक़[7] बाक़ी है, अब भी यह करम[8] फ़र्माते हैं।
जब कोई ख़बर सुन लेते हैं, पुरसिशके[9] लिए आ जाते हैं ॥

अनवर साबरी और दाद तो अब लाजिम-ओ-मलजूम होकर रह गये है। लिहाजा खूब दाद मिल रही है—

---

[1]वातावरणके; [2]दृश्यसे; [3]अवश्य; [4]दरिया किनारेकी शान्ति; [5]तूफानोसे; [6]नाव; [7]सम्बन्ध; [8]कृपा; [9]हाल पूछने।

वोह आख़िरे-शब चुपके-चुपके, जब याद मुझे फ़र्माते हैं।
शबनमकी[1] धड़कती है छाती, तारोंको पसीने आते हैं॥
जब उनको जरूरत होती है, कुछ बात मुझे समझानेकी।
बेरब्त-से[2] मुबहम[3] अफ़साने[4], औरोंको सुनाये जाते हैं॥

अनवर साबरी साहबको दाद मिल रही है और 'अख़्तर' और 'नेर्वी' (संचालक मुशाअ़रा) उनका पाँव दबा रहे हैं, जिसका मतलब यह है कि अनवर साहब और न पढे, क्योंकि ११ बजनेमे वक्त बहुत कम रह गया है और 'अख़्तर' साहबके प्रोग्रामके मुताबिक अभी कुछ और शुअ़राको पढना है। 'अनवर' साहबने अपना भारी भरकम पाँव 'अख़्तर' साहबके पाँवपर रख दिया है। जिसका मतलब है कि घबराइए नही, अभी खत्म किये देता हूँ। चुनाचे 'अनवर' साहब आखिरी शेर पढ़ रहे हैं—

मजबूर तमाशा होते हैं, जब जेरे-नकाब उनके जलवे।
दुनियाकी नजरसे बचनेको वोह मेरी नजर बन जाते हैं॥

'सरवर' साहबकी की हुई कमेण्ट्रीकी हमने तनिक-सी झलक दिखाई है। वरना ख़ास-ख़ास आदमी कहाँ बैठे हैं, किस लिबासमे आये हैं, चुपके-चुपके क्या बाते होती हैं, कौन किसपर फ़ब्तियाँ कस रहा है? मुशाअ़रोके सयोजकोपर क्या हाशियाराई हो रही है, वग़ैरह-वग़ैरह सभी कुछ जो आँखोसे देखते और कानोसे सुनते हैं, बहुत ख़ूबीसे बयान करते हैं।

१७ फरवरी १९५४ ई०]

---

[1]ओसकी; [2]असम्बन्धित; [3]व्यर्थ; [4]किस्से।